जैनमित्रके बारहवें वर्षका उपहार।

ॐ

श्रीवीतरागाय नमः।

जैनधर्मका महत्त्व।

अर्थात्

जैनधर्मसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेखोंका संग्रह।

———

(प्रथम भाग)

हरदानिवासी बाबू सूरजमलजी सहायक
सम्पादक 'जैनमित्र' द्वारा सम्पादित

और

जैनमित्रकार्यालय बम्बई द्वारा

मुम्बईवैभव स्टीम प्रेसमें मुद्रित।

प्रथमावृत्ति] श्रीवीर नि० संवत् २४३७ [मूल्य ।।।)

ईस्वी सन् १९११

———

Published by Babu *Surajmal*, Sub Editor of the "*Jain-Mitra*" at Hirabag-Bombay and Printed by C S Deole at Bombay Vaibhav Steam Press, 54 Kandewadi, Girgaon, Bombay.

श्रीवीतरागायनमः ।

जैनधर्मका महत्व

अर्थात

जैनधर्मसम्बंधी महत्वपूर्ण लेखोंका संग्रह ।

---

(१)

महावीर स्वामीका पवित्र जीवन ।

" गये दोनों जहां नजरसे गुजर
तेरे हुस्नका कोई बशर न मिला "

हिन्दुओंमें ऐसे लोग कम नजर आएंगे जो महावीर स्वामीके पाक और मुकद्दस नामसे वाकिफ होंगे । ये जैनियोंके आचार्य्य गुरु थे: पाकदिल, पाकख्याल, मुजस्सिम पाकी व पाकीज़गी थे । ये किसी और तरफके नहीं थे, न किसी और कौमके थे, हमारे

---

१. श्रीयुत महात्मा शिवव्रतलालजी वर्म्मन एम. ए. द्वारा सम्पादित-साधु मासिक पत्र जनवरी सन १९११में उद्धृत । २ पवित्र । ३ आदमी । ४.साफ, ... । ५. जानकार । ६ बिल्कुल सरसे पैर तक ।

कौमी बजुर्ग[1] थे। हमारे ही नेशन (वर्ण) से थे और हम इनके नामपर, इनके कामपर और इनकी बेनजीरे[2] नफसकुशी[3] व रियाज-तकी[4] मिसालपर जिस कदर नाजें[5] करें बजा है।

हिन्दुओ! अपने बजुर्गोंकी इज्जत करना सीखो, मजहबी इख्त-लाफातकी[6] वजहसे उनकी शानमें भूलकर भी कलमें[7] नाजेबा इस्ते-माल न करो। जैनी हमसे जुदा नहीं है। हमारे ही गोश्त व पोश्त[8] हैं। हमारे ही हमखयाल है, हमारी ही कौमके इफरातें[9] है। उन नादानोंकी बातोंको न सुनो, जो गलतीसे, गुमराहीसे[10], नादानी और तास्सुबे[11] से कहते रहते है कि "**हाथीके पांवके तले दब जाओ, मगर जैनमंदिरमें घुसकर अपनी हिफाजतें[12] न करो।**" इस तास्सुबका कहीं ठिकाना है? इस तंगदिलीकी कोई हद भी है? आखिर इनसे तास्सुब क्यों किया जाय? हिंदूधर्म वसी[13] ख्यालात व फराखदिलीकी[14] तर्री[15] है, वह तंगदिली या तास्सुबका हामी[16] नहीं है और फिर तास्सुब किससे? ये तो अपने ही हैं। क्या हुआ अगर इनके किसी ख्याल तुमको मुवाफकत नहीं है? न सही, कौन सब बातोंमें सबसे मिलता है? तुम उनके गुणोंको देखो, उनकी पाकीजह[17] मूरतोंका दर्शन करो, उनके भावोंका प्यारकी निगाहसे नज्जारे[18] देखो। ये धर्म कर्मकी झलकती

---

१. बड़े। २. असाधारण, जिसकी कोई मिसाल न हो। ३. इंद्रिय-दमन। ४. तपस्वी। ५. अभिमान। ६. भिन्नता। ७. अशोभित वाक्य। ८. खाल। ९. टुकड़े। १०. अज्ञानसे। ११. पक्षपातसे। १२. रक्षा। १३. बड़े। १४. विस्तारित चित्त। १५. नम्रता। १६. मददगार, सहायक। १७. पवित्र। १८. दृश्य।

हुई नूरानी मूर्ते है। किसीके कहने सुनने पर न जाओ। जो जैसा हो उसको वैसा ही देखो, जो जैसा कहता है उसको वैसा ही सुनो, उनके दिलमें घुसकर अपनी जगह बना लो। उनका दिल विशाल था, वह एक वेपायां कनार समंदर था जिसमें इनसानी हमदर्दीकी लहरें जोर शोरसे उठती रहती थीं और सिर्फ इनसान ही क्यों? उन्होंने संसारके प्राणी मात्रकी भलाईके लिए सबका त्याग किया, जानदारोंकी खूनरेजी रोकनेके लिए अपनी हस्तीका खून कर दिया। ये अहिंसाकी परम ज्योतिवाली मूर्तियां है, वेदोंकी श्रुति "अहिंसा परमो धर्मः" कुछ इन्हीं पाक बजुर्गोंकीजिंदगीमें अमली सूरत अख्तयार करती हुई नजर आती है। ये दुनियांके जबरदस्त रिफार्मर जबरदस्त मोहसिनं और बडे ऊंचे दर्जेके वाइजं और प्रचारक गुजरे हैं, ये हमारी कौमी तवारीखके कीमती रत्न हैं। तुम कहां और किनमें धर्मात्मा प्राणियोंकी तलाश करते हो? इनको देखो. इनसे बेहतर साहब कमाल तुमको कहां मिलेंगे? इनमें त्याग था, इनमें वैराग्य था, इनमें धर्मका कमाल था, ये इनसानी कम-जोरीसे बहुत ऊंचे थे, इनका खिताब 'जिन' है, जिन्होंने मोह मायाको और मन और कायाको जीत लिया था। ये तीर्थंकर हैं, ये परमहंस हैं, इनमें तसन्नों नहीं था। बनावट नहीं थी, जो बात थी साफ २ थी। ये वह लासानी शखसीयतें हो गुजरी

हैं, जिनके जिस्मानी[1] कमजोरियों व ऐबोंके छिपानेके लिये किसी जाहिरी पोशिशकी जरूरत लाहक[2] नहीं हुई। क्योंकि उन्होंने तप करके, जप करके, योगका साधन करके आपने आपको मुकम्मिल[3] बना लिया था। तुम कहते हो कि, ये नग्न रहते थे, इसमें ऐब क्या है? परम अंतर्निष्ठ, परम ज्ञानी, कुदरतके[4] सच्चे पुत्र, इनको पोशिशकी[5] जरूरत कब थी?

सुनो, एक मरतबह मुसलमानोंका **सरमद** नामी फकीर देहलीके गली कूचोंमें बरहना[6] मादरजाद होकर घूम रहा था। औरंगजेब बादशाहने देखा, तनपोशिके लिए कपड़े भेजे, फकीर मजजूब[7] और वली था, कहकहा[8] मारकर हँसा, कलम दावात कागज पास था, एक रुबाई[9] लिखी और बादशाहके खिलअतको[10] यों ही वापिस कर दिया। रुबाई यह थी:---

आँकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद।
मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद॥
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद।
बे ऐबा रा लबास अयानी दाद।

ये लोग सूफियेका कलाम है और वह इन जैनी महात्माओंकी पाक

---

१. शारीरिक। २. मालूम। ३. पूरा, पूर्ण। ४. प्रकृति, नेचर। ५. कपड़ा। ६. नंगा। ७. अपनी ही आत्मामें लीन, निजानंद अवस्थामें। ८. खिल-खिलाकर। ९. शेर (छंद) १०. कीमती कपड़ेको ११. जिसने हमको बादशाही ताज दिया, उसीने हमको परेशानीका सामान दिया। जिस किसीमें कोई ऐब पाया, उसको लिबास पहिनाया और जिनमें ऐब न पाए उनको नंगेपनका लिबास दिया।

जिंदगीके इसके हाल है। फकीरोंकी उरयानी देखकर तुम क्यों नाक भौं सकोड़ते हो ? उनके भावोंको क्यों नहीं देखते ? सिद्धांत यह है कि, आत्माको शारीरिक बंधनसे और ताअल्लुकातके पोशि-शसे आजाद करके बिलकुल नंगा कर लिया जाय ताकि इसका निज रूप देखनेमें आवे। ये आत्मज्ञानी थे आत्माका साक्षात्कार कर चुके थे। यह वजह है कि जाहिरदारीके रस्मोरिवाजसे परे रहते थे। यह ऐबकी बात क्या है ? तुम्हारे लिए ऐब हो, इनके लिये यह तारीफकी बात थी, बस इतनी ही बातपर तुम नफरतें करते हो और हकीकतें को नहीं समझते, तुमको क्या कहा जाय ? तुम ईश्वरदर्शीमें रहनेवालोंको अपने ऐसा आदमी समझते हो, यह तुम्हारी गलती है या नहीं ?

महावीर स्वामी जैनियोंके आखरी व चौबीसवें तीर्थंकर थे। कौमके राजपूत क्षत्रिय, इक्ष्वाकुवंशके भूषण, रघुकुलके रत्न, इनका जहूर पार्श्वनाथसे ढाई सौ वर्ष बाद हुआ था। पैदाइशकी जगह क्षत्री-कुंड बताई जाती है जिसका राजा सिद्धार्थ था। ये उसके लड़के थे। माका नाम त्रिशला था और मुबारिक थे वे मा-बाप, जिनके घरमें यह गोहर बेबहा पैदा हुआ था। ये अपने मा-बापके इक-लौते बेटे नहीं थे, मगर तख्त व ताजके वारिस होनेकी काबलीयत रखते थे। इनके पैदा होनेसे शाही खानदानको जो खुशी हुई, वह बयानसे बाहर है। भारतवर्षका पवनखंड जहां सिद्धार्थकी हकूमत थी इस नौनिहालके पैदा होनेसे चमन २ हो गया। बापने खुश

होकर इनका नाम **वर्द्धमान** रक्खा, मगर दुनियांकी मजहबी तवारीखमें ये **महावीरस्वामी**के नामसे ज्यादहतर मशहूर है। जिस्म तनुमंद[1], हाथीके ऐसा बल, बैलके ऐसे कंधे, बदनके खूबसूरत, उजुंके[2] सुडौल थे। जिस्म क्या था, नूरके सांचेमें ढली हुई मूर्ति थी। आलिम, फाजिल, तीरअंदाज[3], खंजरकश[4], सिपाहगरीके फनमें लासानी[5], शेहसवारी, हुनरमें फर्द व एकताए रोजगार, अखाड़ेमें कभी किसीने इनके पीठ नहीं लगाई, पहलवानोंमें पहलवान, **महावीरस्वामी** हरतरहसे दुनियाँमें मुकम्मिल बनकर आये थे। इनकी एक बहिन थी जिसका नाम **सुदर्शना** था, एक बडा भाई **नन्दिवर्धन** और एक छोटा भाई भी था जो **सुपार्श्व** कहलाता था[6]। ऐसे नाम आर्यवंशके कदीम[7] नामोंमेंसे है जैसे रोहताश्व वगैरह और इसी तरहके नाम पहिले पारसियोंमें भी होते थे जैसे गुशताश्य, लहराम्य, तहमास्य वगैरह २, जिससे जाहिर है कि ईरानी और आर्य करीब २ एक ही असल नसलसे हैं।

महावीरस्वामी संस्कृत और प्राकृतके आलिम[8] थे। बापने चाहा कि इनको राजकाजके काबिल बनाया जावे मगर कुदरतने इनको धर्मराज बनाकर भेजा था। ये **सिद्धार्थ**के राजके वारिस होकर

---

१. ताकतवर। २. अर्क। ३. तीर चलानेवाले ४ तलवार चलानेवाले। ५. जमानेमें एक, जिनके समान कोई दूसरा उस समय न हो। ६. नोट—महावीर स्वामी अपने पिताके इकलौते बेटे थे और वे बालब्रह्मचारी थे। लेखक महाशयने जो उनके भाई बहिनों तथा स्त्री व पुत्रीका होना लिखा है शायद वह श्वेताम्बर ग्रंथोंके आधारपर लिखा है। दिगम्बर ग्रन्थोंमें इनका वंश भी इक्ष्वाकु नहीं किन्तु नाथ लिखा है। जन्मका नाम कुण्डलपुर था। ७ प्राचीन। ८ विद्वान।

नहीं आये थे बल्कि ऋषभदेवके धर्मदेशके राजा होनेके लिये जुहूर किया था। इफ्तदाहीसे[1] चित्तमें तीव्र वैराग्य था, साधुओंकी संगतिमें खुश होते थे, योग और ज्ञानके मसाइलकी[2] गुत्थी खूब सुलझाते थे। राजाको खौफ हुआ कि कहीं इनको धर्मकी हवा न लग जाय। बंदिशें करना शुरू कीं, शादी कर दी गई। बीबीका नाम यशोदा था। इसके बुत्नसे[3] एक लड़की भी पैदा हुई जो अनुजरचा और प्रियदर्शनाके नामसे मशहूर है, जिसका विवाह महावीरस्वामीने अपने एक शागिर्दके साथ कर दिया था जिससे जाहिर है कि, वे किस हद तक रस्मी व जाहिरी बातोंके बरखिलाफ थे। इन प्रियदर्शनाके पेटसे जो औलाद हुई वह भी लड़की ही थी जिसका नाम माताने शीशवती ख्वाह यशोवती रक्खा।

महावीरस्वामी वली मादरजाद थे। दिलके नरम, दयावंत, धर्म और क्षमा मिजाजमें कूट २ कर भरी थी। जब अट्ठाईस वर्षके हुए, संसारसे चित्त उदास हो गया। बड़ा भाई चाहता था कि राज इनको दिया जावे क्योंकि ये हरदिलअज़ीज़ थे, उसने वैराग्य होनेपर भी दो वर्षतक उनको मजबूर करके अपने साथ रक्खा, दुनियाँके नशेब व फराज समझाता रहा मगर पत्थरके जोंक नहीं लगती। उसकी नसीहतोंका दिलपर कुछ असर नहीं हुआ।

जाके गुरुने रँग दिया, कबहुँ न होय कुरंग।
दिन दिन बानी ऊजली, चढ़े सवाया रंग॥

होकर इनका नाम **वर्द्धमान** रक्खा, मगर दुनियांकी मजहवी तवारीखमें ये **महावीरस्वामी**के नामसे ज्यादहतर मशहूर हैं । जिस्म तनुमर्द[1], हाथीके ऐसा वल, वैलके ऐसे कंधे, वदनके खूवसूरत, उर्जुके[2] सुडौल थे । जिस्म क्या था, नूरके साचेमें ढली हुई मूर्ति थी । आलिम, फाजिल, तीरअंदाज[3], खंजरकश[4], सिपाहगरीके फनमें लासानी, शेहसवारी, हुनरमें फर्द व एकताए[5] रोजगार, अखाड़ेमें कभी किसीने इनके पीठ नहीं लगाई, पहलवानोंमें पहलवान्, **महावीरस्वामी** हरतरहसे दुनियाँमें मुकम्मिल वनकर आये थे। इनकी एक वहिन थी जिसका नाम **सुदर्शना** था, एक बडा भाई **नन्दिवर्धन** और एक छोटा भाई भी था जो **सुपार्श्व** कहलाता था[6]। ऐसे नाम आर्यवंशके कदीम[7] नामोंमेंसे है जैसे रोहताश्व वगैरह और इसी तरहके नाम पहिले पारसियोंमें भी होते थे जैसे गुशतास्य, लहरास्य, तहमास्य वगैरह २, जिससे जाहिर है कि ईरानी और आर्य करीव २ एक ही असल नसलसे हैं ।

महावीरस्वामी संस्कृत और प्राकृतके आलिम[8] थे । वापने चाहा कि इनको राजकाजके काविल बनाया जावे मगर कुदरतने इनको धर्मराज बनाकर भेजा था। ये **सिद्धार्थ**के राजके वारिस होकर

---

१. ताकतवर । २. अगके । ३ तीर चलानेवाले ४ तलवार चलानेवाले । ५. जमानेमें एक, जिनकीसमान कोई दूसरा उस समय न हो । ६. नोट—महावीर स्वामी अपने पिताके इकलौते वेटे थे और वे वालब्रह्मचारी रहे । लेखक महाशयने जो उनके भाई वहिनों तथा स्त्री व पुत्रीका होना लिखा है शायद वह श्वेताम्बर ग्रंथोके आधारपर लिखा है। दिगम्बर ग्रन्थोंमें इनका वंश भी इक्ष्वाकु नहीं किन्तु नाथ लिखा है । जन्मका नगर कुंडनपुर था । ७ प्राचीन । ८ विद्वान्।

नहीं आये थे बल्कि **ऋषभदेवके** धर्मदेशके राजा होनेके लिये जहूर किया था। इफ्तदाहीसे[1] चित्तमें तीव्र वैराग्य था, साधुओंकी संगतिसे खुश होते थे, योग और ज्ञानके मसाइलकी[2] गुत्थी खूब सुलझाते थे। राजाको खौफ हुआ कि कहीं इनको धर्मकी हवा न लग जाय। बंदिशें करना शुरू की, शादी कर दी गई। बीबीका नाम **यशोदा** था। इसके बुत्नसे[3] एक लड़की भी पैदा हुई जो **अनुजरचा** और **प्रियदर्शना**के नामसे मशहूर है, जिसका विवाह महावीरस्वामीने अपने एक शागिर्दके[4] साथ कर दिया था जिससे जाहिर है कि, वे किस हद तक रस्मी व जाहिरी बातोंके बरखिलाफ थे। इस **प्रियदर्शना**के पेटसे जो औलाद हुई वह भी लड़की ही थी जिसका नाम माताने **शीशवती** ख्वाह **यशोवती** रक्खा।

महावीरस्वामी वली मादरजाद थे। दिलके नरम, दयावंत, धर्म और क्षमा मिजाजमें कूट २ कर भरी थी। जब अट्ठाईस वर्षके हुए, संसारसे चित्त उदास हो गया। बड़ा भाई चाहता था कि राज इनको दिया जावे क्योंकि ये हरदिलअजीज[5] थे, उसने वैराग्य होनेपर भी दो वर्षतक उनको मजबूर करके अपने साथ रक्खा, दुनियाँके नशेब[6] व फराज समझाता रहा मगर पत्थरके जोंक नहीं लगती। उसकी नसीहतोंका दिलपर कुछ असर नहीं हुआ।

जाके गुरुने रँग दिया, कबहुँ न होय कुरंग।
दिन दिन बानी ऊजली, बढ़े सवाया रंग॥

---

१. शुरूसे। २. तत्त्वकी। ३ पेटसे। ४ शिष्यके। ५ सर्व प्रिय। ६. ऊंच नीच।

बडे भाईने कहाः—"वर्धमान ! क्षात्रियका धर्म राज करनेका है, सबको बसमें लाओ, राजको बढ़ाओ, ताकि हमारा घराना दुनियामें नेकनाम बने।" ये हंसे "भाई ! राज नाम है सबको काबूमें लाना, तुम देशका राज करो, मै और तरहका राज करूंगा, तुम दुश्मनोंसे मुल्कको साफ करो, मै काम क्रोध शत्रुओंको मारकर शांतिका नाद बजाऊंगा, तुम तख्तपर बैठो, मेरा तख्त संसारके प्राणियोंका दिल होगा, तुम भारतवर्षका राज भोगो, मै 'जिन' होकर सारे जगतको अपना वशीभूत कर लूंगा, तुम अखंड राज करो, मै प्राणियोको दुःखोंसे नजात[1] देकर संसारको स्वर्गधाम बनाऊंगा। मेरा और तुम्हारा मुकावला होगा और मै देखूगा किसको लाफानी[2] राज मिलता है।" भाई चुप हो गया, कलाममें[3] कुछ ऐसा मकनातीसी[4] असर था जिसका मुकाबला इससे न हो सका। माने समझाया, बापने समझाया, स्त्री रोने लगी, मगर उन्होंने एककी भी न सुनी। जब पूरे तीस वर्षके हुए, एक दिन यों ही घरसे उठ खड़े हुए।

न सुध'बुध' की ली और न 'मंगल' की ली।
निकल घरसे बस राह जंगल की ली॥

घरवाले दुखी हो गये, स्त्रीने दामन[5] पकड़ना चाहा, मा रोई, बाप रोया, भाई बहिनने मुहब्बतके आंसू बहाए, मगर फकीरने किसीकी न सुनी।

---

१. छुटकारा। २. नाश न होनेवाला। ३. वाक्य वचन। ४. आकर्षण शक्ति। ५ कपड़ा, पल्ला।

हुआ इश्क़[1] खुदाका ख्याल मुझे,
तो न दिलमें किसीका खयाल रहा।
नही ऐशो खुशीकी[2] मुझे परवा,
नहीं नामको फिकर मलाल[3] रहा।

जो कुछ करना है कर गुजरो, जिंदगी रोज २ नहीं मिलती। दिलके जजबात अगर सचाईकी तरफ तवज्जह करते है तो उनको मत दबाओ, खुलने दो, हर जिंदगी अपना खास मिशन लेकर आती है, पसोपेशकी[3] आदत बुरी होती है, एक सर हजार सौदाका ख्याल बुरा है।

जन्म मरण दुख याद कर, कोडे काम निवार।
जिन २ पंथों चालना, सोई पंथ संवार॥ १॥

घरसे निकले, संन्यास धारण किया, सुनसान जंगलमें बैठकर दो वर्षतक एकलख्त[4] रियाजत की, जिनके सुननेसे रोंगटे खड़े होते है। खाना पीना हराम होगया, किसी जबरदस्त व्रतको धारण करनेकी सूझी थी, उसके लिये तप करना लाजमी था। क्योंकि तपही असलमे महान कामकी बुनयाद[5] होती है। तप करनेसे जजबात[6] एकसूँ[7] और एक रुख होते है, लोग इस राजको[8] कम जानते हैं, कामसे पहिले तप नहीं करते, इस वजेहसे वह काम मजबूत नहीं होता। पार्वतीको शिवजीसे विवाह करनेका ख्याल आया, शकरका मिलना आसान काम नहीं था, लोगोंने राय दी, पहाडकी चट्टानपर बैठकर तप करो उसने ऐसा ही किया। शिवजीका ख्याल दिलमे पकाने लगी, ख्याल पहिले मुत्तहिदे[9] और मुत्तफिक होकर एक मरकजपर[10]

---

१. प्रेम। २ रंज। ३ आगा पीछा, सोच विचार। ४ एक साथ। ५ नीव। ६. मनकी तरगें, भाव। ७. एक तरफ। ८. भेद। ९. इकट्ठा। १०. मुख्य स्थान।

कायम हुआ और उससे फिर काशिशकी धारें निकलने लगीं और उन्होंने शिवजीको पकड़कर खेंच बुलाया और वह इस तरह पकडे हुए चले आए जैसे हाथी रस्सोंसे बंधा हुआ खिंच आता है। ब्रह्माण्डमें खलबली पड गई, कौन था जो पार्वतीके तपका मुकाबला करता, देवता ऋषि सब आजिज हो गए, जबरदस्ती शिवको प्रेरणा करके बुला लिये, यह तपकी काशिशकी जबरदस्त तासीर थी जिन खूबसूरत लफजोंमें इस सतीको तपका उपदेश दियागया था, वह हमारे और तुम्हारे सोचनेके लायक है। गोस्वामीजी इसको इसतरह कलमबंद करते हैं,—

तपबल रचे प्रपंच विधाता, तपबल विष्णु सकल जगत्राता।
तपबल शम्भु करहिं संहारा, तपबल शेष धरहिं महिभारा।
तप अधार सब सृष्टि भवानी, करहु जाइ तप अस जिय जानी॥

पार्वतीने तप किया, ब्रह्माने वर दिया, सप्त ऋषि देखने आए! पार्वतीकी सूरत बयान करते हुए शाइर[2] इसतरह लिखता है;—

ऋषिन गौरि देखी तहँ कैसी, मूरतवंत तपस्या जैसी॥

तपसे बल व पराक्रम बढ़ता है, तप मिजाजमें साबितकदमी[3] और जबरदस्त इस्तकलाल[4] पैदा कर देता है। इंसानका दिल अटल बन जाता है और इम्तहान व आजमाइशोंके[5] खतरातसे[6] हमेशहके लिए छुट्टी पाजाता है। ये तपका प्रताप है और इसी वजेहसे **महावीर स्वामीने** सख्तसे सख्त तप किये। जिसको तपकी गूढ फिलास्फी समझनी हो, वह इस महान् जिनकी सुहावनीजिंदगीका मुताला[7] करे।

---

१. तग। २. कवि। ३. दृढ़ता। ४. मजबूती। ५. परीक्षाके। ६. डरसे। ७. अवलोकन.।

बहुत दिनोंतक कुछ खाना नहीं खाया। नाकके आगेके हिस्से-पर निगाह जमाकर बैठे रहे। चुपचाप न किसीसे बोलना न चालना न जिस्मका ख्याल न तनका ख्याल, बारिसका मूसलाधार पानी बरस गया, सूरज उनपर अपनी कडी धूपका इम्तहान कर गया, ओस व पालाकी सख्ती और मौसमोंकी सरद महरीने खूब अच्छी तरह आजमा कर देख लिया, सूरज चाहे इधरसे उधर चला जाता, हिमालयकी जगह चाहे समंदर लहरें मारता, मगर इनमें जुंबिश[1] नहीं था। जब सब कुछ हो गया, ज्ञानकी प्राप्तिका वक्त आया एक यक्षने आकर दरख्वास्त की, "महाप्रभु! तप पूरा हुआ," अब देशको चिताइये और धर्मकी मर्यादा कायम कीजिए। ये उठे और कुछ दिनोंबाद राजगृहमें आये। एक गांवका रहनेवाला पंडित जो स्वभावका चंचल था, मिला. इनको फकीर समझकर बाचबीत करनेका शायक[2] हुआ। ये बोले, "तू धर्मकी तलाशमें चला है या अपनी बुद्धि दिखाना चाहता है?" इसने ताम्मुलके[3] साथ कहा "मै धर्मका जिज्ञासु हू" महावीर स्वामीने जवाब दिया, "धर्म मुझमें है, मै धमका रूप हू, मेरी जिंदगी धर्मकी जिंदगी है. मुझको देख तुझको धर्मका दर्शन मिलेगा।" वह हैरान[4] हुआ, मगर इन सीधी सीधी बातोंमें सच्चाई[5] थी, दिलमें असर कर गई और वह उनका शागिर्द बन गया।

जा खोजत ब्रह्मा थके, नर मुनिदेवा।
कहैं कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा॥

फिर ये दौरा करते हुए **श्रावस्ती** और **वैशाली** नगरीमें आये। वहां प्रचार करके बहुत आदमियोंको हकीकतका रास्ता दिखाया, फिर

१, हिलना चलना। २, इच्छुक। ३ धैर्य। ४. चकित।५. सत्यताका।

वे कुशाली शहरमे वारिदं[1] हुए। यहां श्रेणिक राजा राज करता था, इसको धर्मकी प्यास थी, वह उनका चेला बना फिर और लोग मोतकिदं[2] हुए फिर तो वह धर्मका फैलाव[3] फैला कि दुनियां तित्तर वित्तर हो गई। आचार्य्य कुछ थोड़ासा वक्त उपदेशके लिये देते थे, बाकी वक्त तपस्यामें सर्फ करते थे। उन्होंने पूरे बारह वर्षतक तपस्या की और अपनी जिंदगीसे लोगोंको दिखा दिया कि धर्म इस तरहका होता है। धर्म न पोथीमें है, न शास्त्रमें है, धर्म सिर्फ अमली जीवनमे है। अमली जीवन ही तिरता और तारता है। महावीर स्वामीमें सबसे बड़ी खूबी यह थी कि इन्होंने मजबूत अमली मिसाल कायम की। बात कम करते थे मगर जो कुछ कहते थे जची तुलीकहते थे और वह अपना खासा असर रखती थी।

मगध देशमें वैदिक धर्मकी चर्चा थी। उन्होंने ब्राह्मणोंके साथ बारहां[4] शास्त्रार्थ किये और ब्राह्मणोंकी बडी तादादं[5] इनकी चेला हो गई। इनके खास शागिर्दोंमेंसे **इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, वेकत, सौधर्म, मंडितपुत्र, मौरिदपुत्र, अंकपत, अचलव्रत, इमैत्रिय और प्रभास,** ज्यादह मुम्ताज[6] थे, इनमेंसे इन्द्रभूति और सौधर्म भगवान् महावीर स्वामीके निर्वाणपदमें जानेके बाद गुरुके धर्मका मुद्दत तक प्रचार करते रहे।

जैनियोंका ख्याल है कि गौतमबुद्ध*महावीर स्वामीके शागिर्द थे, यह ख्याल सही है या गलत मैं कुछ नहीं कह सकता। मगर यह

१.आये,पधारे। २.अनुगामी। ३बहाव। ४.कईबार।५. सख्या। ६. मान्य.

*बौद्धमतके प्रचारक गौतमबुद्ध दूसरे थे और महावरिस्वामीके मुख्य गणधर गौतम दूसरे थे। एक नामकी वजहसे भ्रम पडता है।

जरूर है कि ये दोनों महात्मा हमअस्त[1] थे और इनके दरमियान वहुत मुशावहत[2] व मुवाफकत नजर आती है।

बौद्धोंके ग्रंथोंमें एक जगह किसी जैनी और बुद्धदेवका संवाद आया है, इससे भगवान् बुद्धने इतना कहा था कि, जैनी तू नहीं है वाल्कि मैं सच्चा जिन हूं, मैंने इन्द्रिय-निग्रह किया है तू-ने नहीं किया और वह लाजवाव होकर चला गया। इसके सिवाय एक वात और भी देखनेमें आती है कि बौद्धों और जैनियोंके दर्मियान हमेशासे मोहब्वत थी और जहां २ बौद्धोंके मंदिर मिलते है वहां साथ ही अक्सर जैनियोंके मंदिर भी मोजूद है।

महावीर स्वामीके सिद्धांत भी अपना खास फलसफा[3] रखते हैं। उनका ख्याल है कि इन्द्रियोंके कमजोर होनेसे ज्ञानका नाश नहीं होता, कर्मकी सत्ता जरूर मानने योग्य है। पाप पुण्यके वशमें आ-कर जीव जन्ममरणके फंदोंमें आता है। पाप पुण्य कर्मके आधार-पर रहते है। जीवकी फरदीयत[4] लाजमी[5] है, अगर ये न हो, तो पाप पुण्यका फल कौन भोगे? परलोकका असूल[6] सही है, परम धर्म सिर्फ अहिंसा है, इंसान तप करें मगर तप ऐसा हो कि अधिक क्लेश न होने पावे। शरीरसे व्यवहार करना चाहिए, मगर इस तरह साधन किया जाय कि शरीर काबूमें रहे वह बेकाबू या खुदमुख्तार[7] न होने-पावे। झूट वोलना महा पाप है, सच वोलना पुण्य है। गर्व करनेवाले चोर, वेरहम मोक्षके अधिकारी नहीं है। ये ही मायाजाल है और उनके जालसे वचने की कोशिशमें लगा रहना चाहिये। जो चोरी ऐव और वेरहमी करते हैं, अधोगतिको प्राप्त होते हैं।

---

१ समकालीन। २. सदृशता। ३. फिलास्फी। ४. अस्तित्व। ५. जरूरी। ६. सिद्धांत। ७ स्वतंत्र।

जैनी अरहंतको आराध्य देव मानते है मगर उनकी पूजा नहीं करते * । उनमेंसे कोई पार्श्वनाथकी पूजा करता है, कोई महावीर स्वामीकी । इन सबमे मतभेद बहुत कुछ नहीं है । पार्श्वनाथके मोताकिद[1] श्वेताम्बरी हैं, जो कपड़े पहिनाते है। महावीर स्वामीके पैरोकार दिगम्बरी है, जो कपड़े नहीं पहिनाते ।

महावीरस्वामीनें तीस वर्ष संसारका सुख भोगा, बारह वर्ष तपस्या की और तीस वर्ष तक धर्मका उपदेश दिया । उनकी उमर बहत्तर वर्षकी थी । आखिर जब शरीर छोड़नेका समय आया, अपापपुरी यानी पावामें विक्रमी सम्वत्से ४७० वर्ष और सन् ईस्वीसे ५२६ वर्ष पहिले निर्वाण पदमें दाखिल हो गये । उनके बाद तीन वर्ष आठ महिने पीछे जैनियोंकी पांचवी आराको[2] आगाज[3] होता है । महावीर स्वामीके अठानवे वर्ष बाद चार सौ पचानवे सूत्र रचे गये ।

आज इस बजुर्गको निर्वाण पाए हुए करीब चौवीस सौ वर्ष हुए, मगर अबतक इसकी कीर्तिका झंडा धार्मिक दुनियांमें लहराता है ।

मुबारिक हैं वे लोग जो धर्मका जीवन व्यतीत करते हैं, क्योंकि इन्हींका जीवन सफल होता है । बाकी लोग तो कीड़े मकोड़ोंकी तरह जन्मते मरते रहते है ।

जैनहितैषी.

---

१ अनुगामी । २. कालका । ३ प्रारभ ।

* यह केवल स्थानकवासी साधुमार्गी जैनियोका मत है। दिगम्बर श्वेताम्बर समानरूपसे चौविसों तीर्थंकरोंका पूजन करते है। तीर्थंकर विशेषका किसीमें मत भेद नहीं है। श्वेताम्बरोंको पार्श्वनाथके पूजक और दिगाम्बरोंको महावीर स्वामीके पूजक बतलाना ठीक नहीं है ।

जैनियोंका तत्त्वज्ञान और चारित्र ।

(जर्मनीके सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान् प्रो० एच. जैकोबीके आक्सफोर्डके धार्मिक ऐतिहासिक परिषद्में पढे हुए एक व्याख्यानका आशयानुवाद)

१. जैनियोके तत्त्वज्ञानके विषयमें जो पुरुष पहिले ही पहिल विचार करता है, उसे ऐसा विश्वास होता है कि, इसमें एक दूसरेसे सम्बन्ध नही रखनेवाले अनेक सिद्धान्त है और उन सबका सामान्य तथा मूलभूत तत्त्व कोई भी नहीं है। उन्हें इस विषयमें बड़ा भारी आश्चर्य होता है कि इस अव्यवस्थित धर्मको आस्तित्व ही क्यों प्राप्त हुआ ? इसके स्थापित होनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? कुछ दिन पहले मेरा भी ऐसा ही विश्वास था। परन्तु अब मैने जैनधर्मको एक दूसरे ही रूपमें अनुभव किया है। मुझे अब मालूम हुआ है कि, जैनधर्मकी स्थापना एक ऐसी तात्त्विक नीवपर हुई है जो कि **ब्राह्मण** और **बौद्ध** इन दोनो ही मतोंसे भिन्न है। वह नीव कौन सी है, आज मै अपने व्याख्यानमें इसी बातका विचार करूंगा।

२. प्राचीन कालमें जिस प्रान्तमें **याज्ञवल्क्य** महर्षिने उपनिषदोके कथनानुसार इस विषयका प्रतिपादन किया कि, **ब्रह्म** और **आत्मा** ये ही विश्वके शाश्वत और केवल तत्त्व है और जहांपर **महावीर** स्वामीके समकालीन **गौतमबुद्धने** अपने क्षणिकवादका उपदेश किया, उसी प्रान्तमें अन्तिम जैनतीर्थंकर **श्रीमहावीर** स्वामीके द्वारा जैनधर्मको अन्तिम स्वरूप प्राप्त हुआ और इसीलिये उसे उक्त दोनों परस्पर विरुद्ध धर्मोंकी अपेक्षासे अपने धर्मकी निश्चित नीव डालना आवश्यक हुआ।

३. उपनिषदोंके कर्त्ताओंने इस तत्त्वकी खोज की, कि प्रत्येक पदार्थमे रहनेवाला एक शाश्वत निराबाध और अद्वितीय तत्त्व सारे विश्वमें व्याप्त हो रहा है और इस तत्वकी उन्होंने जितनी उनसे हो सकी, उतनी महिमा गाई। यद्यपि इस शाश्वत अविनाशी तत्वका जड़विश्वके साथ क्या सम्बन्ध है, यह उन्होंने स्पष्ट रीतिसे नहीं बतलाया है, तथापि इसमें सन्देह नहीं है और प्रत्येक निष्पक्ष पुरुष इस बातको स्वीकार करेगा कि, वे दृश्य जगत्को सत्य वा वास्ताविक समझते थे। यद्यपि इस विषयमें **वेदानुयायियोंकी** भिन्न २ शाखाओंने भिन्न २ प्रकारके विचार प्रगट किये हैं, परन्तु उनकी मीमांसा करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

४. इस नित्य शुद्ध ब्रह्मवाले सिद्धान्तके विरुद्ध **गौतमबुद्धने** यह उपदेश दिया कि, सर्व विश्व क्षणिक—विनाशीक है। "**प्रत्येक होनेवाला पदार्थ नश्वर है**" यही उसके अन्तिम शब्द थे। **बौद्धोंका** कथन है कि, आत्मवाद अर्थात् आत्माको अविनाशी मानना यही सबसे बड़ा मिथ्यात्व है। संसारमें जितने पदार्थ है, वे सब केवल दृश्य मात्र है। **बुद्धदेवके** शब्दोंमे इसीको इस तरहसे कर सकते हैं कि, समस्त पदार्थ **धर्म** है; परन्तु उनका कोई आधार वा **धर्मी** नहीं है। अर्थात् कोई नित्य द्रव्य नहीं है, जिसके धर्म उसके गुण वा विशेषण कहे जा सकें।

५. इस प्रकारसे विश्वको एक दूसरेसे विरुद्ध रूपमे अवलोकन करनेके कारण **ब्राह्मण** और **बौद्ध** इन दोनोंने अपने परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तोंकी स्थापमा की। यदि हम तत्त्वदृष्टिसे विचार करते हैं, तो ब्राह्मणधर्मका यह कथन कि, "विश्वका सम्पूर्ण अस्तित्व अवि-

नाशी निरक्षेप और एकरूप है," सत्य जान पड़ता है, और यदि अपने निरन्तरके अनुभवसे विचार करते है, तो "सारा जगत् जन्म और मरणकी एक परम्परा है" यह बौद्धोंका कथन ठीक जंचता है। परन्तु किसी एक अप्रत्यक्षतः ज्ञात वस्तुका निर्णय करनेमें चाहे ब्राह्मण धर्मके तात्त्विक प्रतिपादनकी सहायता ली जावे, चाहे बौद्धोंके अनुभवावलम्बी मतकी सहायता ली जावे, दोनोंमें ही अनेक अड़चनें आकर उपस्थित होती है और जबतक किसी एक ग्रहण किये हुए सिद्धान्तकी सत्यतामें अंधविश्वास न किया जाय, तबतक ये अड़चनें दूर नहीं होती है।

६. अब यह देखना चाहिये कि, इस तात्त्विक प्रश्नके सम्बन्धमें जैनियोंका मत क्या है:—" **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** " अर्थात् समस्त पदार्थ उत्पत्ति स्थिति और नाश इन तीन अवस्थाओंसे युक्त है। वेदान्तियोंके **नित्यवाद** और बौद्धोंके **अनित्यवाद**से जुदे समझे जानेके लिये जैनी अपने सिद्धान्तको **अनेकान्तवाद** कहते हैं। धर्मी नित्य है, परन्तु उसके धर्म वा गुण अनित्य है अर्थात् वे उत्पन्न होते है तथा नष्ट होते है। जैसे—प्रत्येक जड़पदार्थ पुद्गलस्वरूपकी अपेक्षा नित्य है, परन्तु उसमें जो पुद्गल परमाणु है वे जुदे २ आकारोंको और गुणोंको धारणा करते हैं, इसलिये अनित्य हैं। पुद्गलत्वकी अपेक्षासे मिट्टी शाश्वत—अविनाशी है, परन्तु घड़ेकी अपेक्षासे अथवा रंगकी अपेक्षासे उसमें उत्पत्ति और नाश दोनों संभव हो सकते हैं।

७. सामान्यतया विचार करनेसे यद्यपि जैनियोंका यह सिद्धान्त कुछ गूढ़ नहीं जान पड़ता है और यह समझना कठिन हो जाता है

कि, इसे इतना अधिक महत्व क्यों दिया गया, तथापि जैनतत्त्वज्ञानका यह मूल है और स्याद्वादनयकी अपेक्षा विचार करनेसे इसका वास्तविक महत्व वड़ी स्पष्टतासे समझमें आता है।

८. **स्याद्वादनयका** समानार्थवाची **जैनप्रवचन** शब्द है। जैनियोंको इस बातका अभिमान है कि, मिथ्याज्ञानके जालसे छुटकारा पानेके लिये यह जैनप्रवचन अद्वितीय साधन है। अस्तित्व अर्थात् सत्ता **उत्पत्ति स्थिति** और **लय** इन परस्पर विरोधी गुणोंसे युक्त है इसलिये प्रत्येक अस्तित्व गुणयुक्त पदार्थके सम्बन्धमें भी ऐसी ही अनेकान्तता होती है। जो सिद्धान्त एक दृष्टिसे सत्य होता है, तद्विरुद्ध सिद्धान्त भी दूसरी दृष्टिसे सत्य ठरहता है। इस प्रकारसे प्रत्येक पदार्थपर घटित होनेवाले 'स्यात् अस्ति' 'स्यात् नास्ति' आदि सात नय हैं। स्यात् शब्दका अर्थ 'कथंचित्'—'एक प्रकारसे' अथवा किसी अपेक्षासे' होता है। यह 'स्यात्' शब्द 'अस्ति' का विशेषण है और अस्तित्वकी अनेकान्तताको प्रगट करता है। जैसे कहा जाय कि, **'स्यादस्ति घटम्'** अर्थात् एक प्रकारसे घडा है। तो हमको इसका यही अर्थ करना पड़ेगा कि, अपनी अपेक्षा घडा है, परन्तु **स्यान्नास्ति घटं** अर्थात् दूसरे पदार्थकी अपेक्षासे—पटकी अपेक्षासे घट (घड़ा) नहीं है।

९. इस स्याद्वादसिद्धान्तका उपयोग जो कि ऊपराऊपरी **टटो**लनेसे शुष्कसरीखा प्रतीत होता है, "एकमेवाद्वितीयं" और 'सर्वव्यापी परब्रह्मवाद' के निराकरण करनेमे बहुत होता है। अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन पदाभिधेय है, अर्थात् प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें इन पदोंसे प्रगट की हुई तीनों बाते यथार्थ मानी

जावेंगी। क्योंकि चाहे जो पदार्थ हो, वह ऊपर कहे अनुसार अस्ति और नास्ति इन दो शब्दोंका वाच्य तो होता ही है। अब रहा तीसरा अवक्तव्य, सो उपर्युक्त परस्परविरुद्ध गुणोंका उल्लेख इस शब्दके द्वारा ही करना पड़ता है। क्योंकि अस्ति और नास्ति रूप विरुद्ध स्वभावोंका एक ही समयमें एक ही पदार्थमें रहना किसी भाषाके किसी भी शब्दसे प्रगट नहीं किया जा सक्ता है। इन तीन पदाभिधेयोंका जुदे २ प्रकारसे गुणाकर करनेसे सात नयोंकी स्थापना होती है (१ स्यादस्ति, २ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्तिनास्ति, ४ स्यादवक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य, और ७ स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य) और इन्हें ही **स्याद्वाद** अथवा **सप्तभंग** कहते है। इस सिद्धान्तका विस्तृत विवेचन करके मै आपको कष्ट नहीं देना चाहता हूं। यहां मेरे कहनेका अभिप्राय केवल यही है कि अनेकान्तवादसे ये सातों नय उत्पन्न हुए हैं और यह स्याद्वाद सर्व सत्य विचारोंके खोलनेकी कुंजी है।

१० ऊपर कहे हुए नय स्याद्वादके पूरक हैं। किसीभी पदार्थके स्वभावोंके वतलानेकी पद्धतिको नय कहते हैं। जैनियोंका मत है कि, ये सव नय एकान्तिक है—अर्थात् पदार्थका एक अपेक्षासे विचार करते है अतः इनमें केवल सत्यका अंश रहता है। नय सात प्रकारके है (नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, और एवंभूत) जिनमेंसे चार **अर्थनय** और तीन **शब्दनय** है. इस भिन्नताका कारण यह है कि, पदार्थका आस्तित्व जैसा कि वेदान्ती कहते है अमिश्र नहीं है। उसमे जुदी २ वस्तुओंका मिश्रण है। इसलिये किसीभी पदार्थका वर्णन अथवा किसीभी प्रकारका विधान स्व-

भावसे ही अपूर्ण और एकान्तिक वा एकपक्षीय होता है और इससे किसी एक पदार्थके विषयमें एक ही दृष्टिसे विचार किया जाय, तो वह अवश्य ही भ्रमात्मक वा गलत होता है।

११. इन सब विचारोंमें कुछ विशेष गंभीरता नहीं दिखती है। बल्कि उपनिषदोंके परस्पर विरोधी दिखनेवाले विचारोंके विरुद्ध सामान्य अनुभवज्ञानका समर्थन करनेका इस जैनसिद्धान्तका हेतु है। इसी प्रकारसे उसीका दूसरा परन्तु गौण हेतु बौद्धोंके क्षणिकवादके विरुद्ध है। परन्तु बौद्धमतके साथ स्पष्टतः जान बूझकर वाद करनेका जैनसिद्धान्तका अभिप्राय नहीं दिखता है। और ऐतिहासिक-दृष्टिसे यह बात स्वाभाविक है। क्योंकि **महावीरका** जन्म उपनिषदोंके बहुत पीछे और बौद्धोंके समसमयमें हुआ है; इसलिये ब्राह्मणोंके तत्वोंका स्पष्टतासे निषेध करना और बौद्धसिद्धान्तसे जुदा सिद्धान्त प्रतिपादन करना उसके लिये जरूरी था।

१२. अभीतक यह नहीं कहा गया है कि, **सांख्ययोग** और जैनसिद्धान्तका क्या सम्बन्ध है। **श्रमण**लोगोंमें जिन्हें कि, इस समय योगी कहते है, इनकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये इन दोनोंही मतोंमें एक दूसरेसे मिलते हुए अनेक सिद्धान्त दिखलाई देते हैं। यह बात अब सर्वमान्य हो चुकी है कि, साधुओंके आचारों अथवा योगके हेतुओं और मार्गोंके विषयमें ब्राह्मणों, जैनियों और बौद्धोंका निकट सम्बन्ध है और उनकी उत्क्रान्ति एक ही स्थानमें हुई है। मुझे यहां केवल साधुधर्म और उसकी आवश्यकता सम्बन्धी तात्त्विक कल्पनाओंका विचार करना है।

१३. **सांख्यमतने** उपनिषदोंके और अनुभवज्ञानके मिलान करनेका प्रयत्न किया है। सांख्यके मतसे **आत्मा** अथवा **पुरुष** नित्य और **प्रकृति** अथवा **जड़पदार्थ** अनित्य है। सांख्यवादमें प्रकृतिसे सारा जड़विश्व उत्पन्न हुआ माना है और जैनमतके अनुसार भी पुद्गलसे ही सारा भौतिक जगत् उत्पन्न होता है। इससे सांख्य और जैनमतका इस विषयमें एक मत है और मुझे मालूम होता है कि, यह मत (पुद्गलसे जड़जगत्की उत्पत्ति मानना) सबसे अधिक प्राचीन है। प्रत्येक वस्तुमें जो परिणमन वा फेरफार होता है, चाहे वह स्वाभाविक हो चाहे मंत्रादि उपायोंसे हुआ हो, उसका इसी सिध्दांतके आधारसे खुलासा होता है। जड़द्रव्यकी इस एकही कल्पनासे सांख्यवादियों और जैनियोंने जुदे २ सिद्धान्त निकाले है। अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे लेकर अत्यन्त जड़पदार्थोंतक सबकी उत्पत्ति और विनाशका क्रम सांख्यमतके अनुसार निश्चित व नियमित है। यह क्रम जैनियोंको मान्य नहीं है। वे कहते है कि, विश्व अनादिनिधन और नित्यस्थितिरूप है। उनके मतसे जड़सृष्टि परमाणुओंसे बनी है और उसके स्वरूपमे तथा उसकी रचनामें (मिश्रतामें) परिवर्तन होता रहता है। कुछ परमाणु सूक्ष्म अवस्थामें (जुदे २) रहते है और कुछ स्कन्धअवस्थामें। उनका यह विलक्षण मन्तव्य है कि, असंख्यात सूक्ष्म परमाणु एक स्थूल परमाणुके अवकाशमें रह सकते है। इत मतका उनके आत्मवादसे क्या सम्बन्ध है, यह मै अब वर्णन करता हूं। मै यहां यह प्रगट कर देना अवश्यक समझता हूं कि, जिसतरह सांख्यवादी केवल बुद्धि अहंकार मन और इन्द्रियोंकी मिश्रतासे आत्मवादके उपकरण

तयार करते हैं, उस तरह जैनी नहीं करते है। जैनमत इस विषयमें सरल और स्पष्ट है। उसका सिद्धान्त है कि, शुभ और अशुभ परिणामोंके अनुसार कर्मपरमाणु जीवके साथ सम्बन्ध करते हैं और उसे अशुद्ध करके उसके स्वाभाविक गुणोंको ढँक देते है। जैनीलोग स्पष्टशब्दोंमें कहते है कि, कर्म एक प्रकारके जड़परमाणु हैं। उनका यह कथन आलंकारिक नहीं; अक्षरशः सत्य है। जीव अत्यन्त हलका है और उसका स्वभाव ऊर्ध्वगत (ऊपर जानेवाला) है परन्तु कर्मपुद्गलोंके कारण वह जड़सरीखा होकर नीचे रहता है और उनसे मुक्त होते ही—छूटते ही सरल रेखामें ऊपर जाकर लोकके उच्चतम स्थानमें ठहर जाता है। कर्मोंके जड़ कहनेका दूसरा प्रमाण यह है कि, जिन कर्म परमाणुओंका आत्मासे सम्बन्ध हो गया है, वे भिन्न २ अवस्थाओंको धारण कर सकते है। पानीमें घुली हुई मिट्टीके समान वे (कर्म परमाणु) कभी **उदय** अवस्थामें रहते हैं. कभी जिस तरह मिट्टी थिराकर नीचे बैठ जाती है उस तरह **उपशम**रूप रहते है और कभी जिसतरह जलसे मिट्टी बिलकुल अगल कर दी जाती है और शुद्ध जल रह जाता है. उसतरह क्षय अवस्थाको प्राप्त हो जाते है अर्थात् उनमें आत्माके गुणोंका घात करनेकी शक्ति नहीं रहती है। पानीमें मिली हुई कीचड़के परमाणुओंकी अपेक्षा यद्यपि कर्मपरमाणु अनन्तगुणित सूक्ष्म है, तथापि उन्हें पुद्गल वा जड़ ही माना है। आत्माकी कृष्ण नील कापोत आदि लेश्याओंका तथा उनके रंगोंका विचार करनेसे भी यही बात अनुभवमें आती है। **अजीविक** नामके सम्प्रदायका भी यही मन्तव्य है, जिसके विषयमें कि, डाक्टर हॉर्नलीने 'इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजियन

में लिखा है। लेश्याके रंग कर्मके मिश्रणसे आत्मापर चढ़ते हैं। इस वातसे भी कर्मजड़ है—पौद्गलिक हैं, यह सिद्ध होता है।

१४. कर्मपरमाणुओंका जिनका कि आत्माके साथ एक प्रदेशावगाह सम्बन्ध हो जाता है, आठ भेद हो जाते हैं। जिसतरह एकवार किया हुआ भोजन शरीरके भिन्न २ रसोंमें पलट जाता है, उसी प्रकारसे आत्माद्वारा ग्रहण किये हुए कर्मपरमाणु आठ प्रकृतियोंमें परिणत हो जाते है। इन पुद्गलोंसे एक सूक्ष्म शरीर (कार्म्मांण शरीर) वनता है और वह जवतक जीवका मोक्ष न हो जावे, तवतक जन्म जन्मान्तरोंमें भी आत्माके साथ लगा रहता है—वन्धयुक्त रहता है जैनियोंके इस सूक्ष्म अर्थात् कार्माण शरीरकी तुलना सांख्योंके लिंगशरीसे हो सकती है इस कार्माण शरीरके कार्य समझनेके लिये हमको आठ प्रकारके कर्मोंके स्वरूपका थोडासा विचार करना चाहिये **ज्ञानावरणीय** और **दर्शनावरणीय** कर्मोंसे आत्माके ज्ञान और दर्शन गुणका घात होता हैं **मोहनीय** कर्मसे मोह और कपायोंकी उत्पत्ति होती है, **वेदनीय** कर्मसे सुख और दुःखका अनुभव होता है **आयु** कर्मसे जीवको वर्तमान जन्ममें नियमित काल तक रहना पड़ता है **नाम** कर्मसे वर्तमान शरीरसम्बन्धी आकारादिकी रचना होती है **गोत्र** कर्मसे ऊंचे नीचे कुलमें जन्म होता है और **अन्तरायसे** सुखभोग और शक्तिका उपयोग नहीं किया जा सकता है इन आठ कर्मोंका परिणाम (परिपाक. उदयमें आना) भिन्न २ नियमित समयोंमें होता है पश्चात् उन कर्मोंकी **निर्जरा** होती है अर्थात् कर्मपरमाणु अपने स्वभावानुसार फल देकर झड जाते हैं। इससे विरुद्ध क्रियाको अर्थात् आत्मामें कर्मपरमाणुओंके आनेको

आस्रव कहते है. मन वचन कायकी क्रियासे आस्रव होता है। मिथ्यादर्शनसे, अव्रतोंसे, प्रमादोंसे और कापायोंसे आत्माके साथ कर्मपरमाणुओंका सम्बन्ध होता है. इसे **बन्ध** कहते है और इसके रोकनेको **संवर** कहते है

१५. जैनियोंने अपने तत्त्वज्ञानकी इमारत इस सरल और स्पष्ट कल्पनापर खडी की है और संसारकी स्थितिके तथा उससे मुक्त होनेके उपाय बतलाये हैं. सांख्यमतवालोंने भी इसी प्रकारक विचारोंको प्रगट किया है, परन्तु उनकी रीतियां कुछ भिन्न ही प्रकारकी है।

१६. **संवरके** (कर्मोंके आस्रवके रोकनेके)मन वचन कायका निरोध करना (गुप्ति), सम्यक्चारित्र (?) पालना, धर्मध्यान करना, और सुख दुःखमें माध्यस्थ भाव रखना, आदि कारण है इनमें सबसे महत्त्वका कारण तपश्चरण है, क्योंकि उससे केवल नवीन कर्मोंका आगमन ही नहीं हो सकता है; किन्तु पूर्वसंचित कर्मोंका क्षय भी होता है और इसलिये यह मोक्षका मुख्य मार्ग है जैनमतमें तपका जो अर्थ किया गया है, वह कुछ असाधारण है वह **अन्तरंग** और **बाह्यके** भेदसे दो प्रकारका है उपवास करना, थोडा वा रसहीन भोजन करना (ऊनोदर, रसपरित्याग), और शरीरको क्लेश देना आदि **बाह्यतप**, हैं और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य ध्यान आदि **अन्तरंगतप** है। जैनियोंका यह मन्तव्य ध्यानमें रखना चाहिये कि, ध्यान यह मुक्ति प्राप्त करनेके मार्गका एक भाग है और यद्यपि मोक्ष प्राप्त करनेके पहले ध्यानकी ही सीढ़ी है, तौभी दूसरे प्रकारके तप भी उतने ही महत्त्वके हैं । सांख्ययोगमें जैनधर्मकी तुलना करते समय इसे बातका महत्व प्रगट होगा।

साख्यमतमें जैन तपोंके कुछे भेद हैं. परन्तु उनका महत्त्व ध्यानकी अपेक्षा वहुत कम है । वल्कि ध्यान ही योगमें मुख्य है, दूसरे तप अंगभूत अथवा गौण हैं । और जो लोग ज्ञानहीको मोक्षप्राप्तिका मुख्य साधन मानते है, उनके मतमे ऐसा मन्तव्य होना स्वाभाविक है । मुझे ऐसा मालूम होता है कि, सांख्यने जो वुद्धि अहंकार मन और प्रकृतिकी परणति निश्चित की है, वह ध्यानका महत्व वढ़ानेके लिये ही है । सांख्ययोग यतिधर्मका तत्त्वीवचार है । जैनियोंका यतिधर्म कुछ जुदे ही प्रकारका है । उसका उद्देश आत्माको कर्मोंसे मुक्तकरनेका है । उस समयके यतिधर्ममें शरीरको कष्ट देनेका अत्याचार वहुत प्रचलित था । जैनधर्मने उसको नष्ट कर दिया, इसमें सन्देह नहीं है । परन्तु उसने उसको सर्वथा ही नहीं वदला । व्राह्मणोंके योगकी अपेक्षा वहुत प्राचीन कालके संन्यास धर्मको जैनधर्मने पुनरुज्जीवित किया ।

१७. अन्तमें भारतके तत्त्वज्ञानोंमेंसे न्याय और वैशेषिक दर्शनके विषयमें थोडासा उल्लेख करना आवश्यक है । संस्कृतभाषा भाषी सव लोगोंकी सामान्य विचारपद्धतीको निश्चित करना और उसको व्यवस्थित स्वरूप देना यह इसी दर्शनका कार्य्य था । जैनियों सरीखे अनुभवज्ञानकी और लक्ष्य देनेवालोंको ऐसे दर्शनके विषयमें विशेष प्रेम हो, यह एक स्वाभाविक वात है। और इसीलिये उन्होंने न्याय विषयके अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। परन्तु महावीर स्वामीके समयमें नैयायिक वैदिक धर्मसे सर्वथा जुदे नहीं हुए थे । जैन ग्रन्थोंसे ऐसा पता लगता है कि वैशेषिकदर्शनकी स्थापना चालुहय रोहगुत्तने जोकि पहले जैनी था, की थी । वैशेपिकोंका

परमाणुवाद जैनधर्ममें पहलेहीसे वर्णित था, इससेभी जैनियोंका उक्त कथन ठीक मालूम होता है । न्यायदर्शन जैनधर्मसे पीछे स्थापित हुआ है, इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

१८. **जैनधर्म सर्वथा स्वतंत्र धर्म है**—मेरा विश्वास है कि, वह किसीका अनुकरण नहीं है और इसलिये **प्राचीन भारतवर्षके तत्त्व ज्ञानका और धर्मपद्धतिका अध्ययन करनेवालोंके लिये वह बड़े महत्त्वकी वस्तु है ।**

जैनहितैषी.

(३)

रा. रा. वासुदेव गोविंद आपटे बी. ए. का
जैनधर्मपर व्याख्यान.*

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा ।
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम् ॥
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तम् ।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥१॥

---

* यह व्याख्यान रा. रा. वासुदेव गोविंद आपटे, बी. ए. इन्दौरकरने मुम्बयीस्थ हिन्दू यूनियनक्लबमें गत दिसम्बर मासमें दिया था और मुबईके 'विविधज्ञानविस्तार' (नामक मराठीके प्रसिद्ध मासिकपत्र) में जनवरीके अंकमें प्रकाशित हुआ था उसीका यह हिन्दी अनुवाद है. इसके पढ़नेसे पाठकोंको ज्ञान होगा, कि भिन्नधर्मी निष्पक्ष विद्वज्जन जैन धर्मको कैसा समझते हैं. हम इसकेलिये व्याख्यानदाताको कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि, जिन्होंने महत्परिश्रम उठाकर जिनधर्मके ग्रंथोंको देखकर परिचय किया और अपने विचारोंको सबके सामने प्रगट किया. यहांपर हम मूल व्याख्यानका अनुवाद ज्योंका त्यों लिखकर उसमें अपनी तरफसे टिप्पणी करते हैं इस टिप्पणीसे कोई महाशय ऐसा न समझलें कि व्याख्यानदाताकी शोधकतामें कुछ न्यूनता हो, क्योंकि कैसा ही विद्वान् क्यों न हो भिन्न धर्मपर व्याख्यान देनेपर कहीं न कहीं थोड़ी भूल होती है. सो जहांपर वास्तविक विषय छूट गया है और अभिप्रायमें अन्यथा हुवा है, उसी विषयकी टिप्पणी की जाती है—आशा है कि, व्याख्यानदाता इसपरसे कुछ अन्यथा न समझेंगे.

अनुवादक.

इस श्लोकमें श्रीमद्भट्टाकलङ्कदेवने " जानने योग्य ऐसे सम्पूर्ण विश्वको जिसने जाना, संसाररूपी महासागरकी तरंगें दूसरी तरफ तक जिसने देखी, जिसके वचन परस्पर अविरुद्ध, अनुपम और निर्दोष हैं, जो सम्पूर्ण गुणोका निधि (खजाना) साधुओ करके भी वन्दनीय है, जिसने रागद्वेषादि अठारह शत्रुओंको नष्ट कर दिये है और जिसकी शरणमें सैकडों लोग आते हैं, ऐसा जो कोई पुरुष विशेष उसको मेरा नमस्कार होओ. फिर चाहे वह शिव हो ब्रह्मा हो, विष्णु हो, बुद्ध हो, अथवा वर्द्धमान होओ. ऐसी स्तुति की है. इस श्लोकके अन्तिम चरणमें कहे हुए देव शिव व विष्णुसे हम सब लोग चिरपरिचित है. हमारे मन्दिरोंमें इनकी मूर्तियां है, व प्रतिदिन हम उनका पूजन करते है. तीसरा बुद्ध, इसके विषयमेंभी अभीतक बहुतसा इतिहास उपलब्ध हुआ है, बुद्धके दो तीन चरित्र भी मराठी भाषोंमें लिखे गयें है, उनसे यह क्षत्रिय कुलोत्पन्न पुरुष अत्यन्त तरुण अवस्थामें राजश्रीसे विरक्त हो स संगका परित्याग कर चल निकला व पश्चात्, ज्ञान सम्पादन कर शुद्ध मन पवित्र विचार व पवित्र आचरण यह तीन मोक्षके द्वा धर्ममें कहे गए है ऐसे बौद्धधर्मका संस्थापक हुआ इत्यादि कथ हम सबको अवगत है ही. शिवके उपासक शैव, विष्णुके वैष्णव, इसीप्रकार बुद्धके अनुयायी सो बौद्ध कहाते है अब

वर्धमान. अथवा महावीर.

निर्दिष्ट किये हुए देवोंमें वर्द्धमान रहे. इनके विषयमे यद्यपि अभीतक कु अधिक इतिहास उपलब्ध नहीं हुआ तथापि ये जैन समाजके अत्यन्त पूज्य तीर्थंकर अर्थात् आद

पुरुष हो गये हैं. और जैनधर्मकी स्थापना करनेवाले चाहे न हों, परन्तु उसके प्रचार करनेका श्रेष्ठत्व बहुतसा इनके ही तरफ जाता है यह कहना भी कुछ अनुचित न होगा. ये काश्यप गोत्री क्षत्री थे व इनका दूसरा नाम महावीर था, इनका जन्म कब हुआ, व कब मोक्ष हुई. इनके मातापिताका क्या नाम था व इनके चरित्रकी स्फुट २ बातें कौनसी हैं, इत्यादि परिचय अभीतक प्राप्त नहीं हुआ है. तथापि इन्होंने जैनधर्मका प्रचार कब किया इस विषयमें तत्कालीन ग्रन्थोंमें थोडासा उल्लेख किया हुआ प्राप्त होता है. उसपरसे यह ईसवी सनसे ५२० वर्ष पूर्व हो गये हैं ऐसा कहा जाता है " आर्यविद्या सुधाकर " नामक ग्रन्थमें इनके विषयमें कहा है—

ततः कालेनात्र खण्डे भारते विक्रमात्पुरा ।
खमुन्यंभोधिविमते वर्षे वीराह्वयो नरः ॥ १ ॥
प्राचारयज्जैनधर्मं बौद्धधर्मं समप्रभम् ।

इसपरसे विक्रम संवत्से ४७० वर्ष पूर्व इन्होंने जैनधर्मका प्रचार किया, ऐसा दिखता है. वर्द्धमान अथवा महावीरके चारित्रका

---

१ वर्द्धमान अथवा महावीरके विषयमें हमारा कहना यह है कि, वर्द्धमान तीर्थंकरने उत्तरहिंदुस्थानमें कुंडलपुरमें जन्म लिया था, इनकी माताका नाम प्रियकारिणी तथा त्रिशला भी था और पिताका नाम सिद्धार्थ राजा था. उनके चरित्र सम्बन्धी समस्त विषय प्रसिद्ध है. उनका सविस्तर जैनबोधकके आदि सम्पादक श्रीयुत श्रेष्ठिवर्य हीराचन्द नेमिचन्द्र ऑनररी मजिस्ट्रेट शोलापुरने मराठी भाषामें बनाकर छपाया है. उसको तथा संस्कृत व हिंदीके महावीर पुराण (वर्द्धमानपुराण) के देखनेसे पाठकोंकी जिज्ञासा पूर्ण हो सकती है.

इससे अधिक परिचय उपलब्ध नहीं है. तथापि इन्होने जिस जैनधर्मका प्रचार किया व जो धर्म बौद्धधर्मसमप्रभम् (बराबरीवाला) था. ऐसा ऊपरके श्लोकमें कहा है, वह जैनधर्म यद्यापि विद्यमान है. हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीपर्यंत किंबहुना उससे भी आगे सीलोन द्वीप व कराचीसे लेकर कलकत्ता तक अथवा उससे भी आगे श्याम, ब्रह्मदेश, जावा वगैरह प्रदेशोंमे जैनधर्मी लोग फैले हुए मिलते है. हिंदुस्थानके सम्पूर्ण व्यापारका $\frac{1}{2}$ भाग जैनियोंके हाथमें है ऐसा भी प्रमाण एक शोधकने शोधा है; बडे २ जैन कार्यालय, भव्य जैनमन्दिर व अनेक लोकोपयोगी संस्थायें हिंदुस्थानके बहुतसे बडे २ शहरोंमें हैं. दाक्षिणमें अल्प है परन्तु उत्तर व मध्यभारत और गुजरात इन प्रदेशोंमें जैनियोंकी प्राचीन कार्यवाही बहुत दृष्टिगोचर होती है. प्राचीन कालसे जैनियोंका नाम इतिहास प्रसिद्ध है जैनधर्मके अनेक राजा हो गये है.

जैनियोंकी उत्कर्षावस्था.

जैनी राजा.

राजा वज्रकरण यह दशनगरमें (वर्तमान मन्दसौरमें) राज्य करता था. यह जिनदेवके अतिरिक्त इतर किसीको भी नमस्कार नहीं करता था. अवन्तीनगरी (उज्जैन) के सार्वभौम राजा सिंहोदरको जब इसने नमस्कार नहीं किया तब दोनोंके मध्य एक बडाभारी संग्राम उपस्थित हुआ और उसमें सिंहोदर विजित किया गया. ऐसी कथा सुनते हैं. ललितपुरके सन्निकट **चन्देरी** नामक ग्राम वर्तमान है. यहांपर शिशुपाल नामका राजा राज्य करता था, वह जैन था. उज्जयनीके राजा

गन्धर्वसेन व श्रीवर्मा जैन थे. ऐसा कईएक ग्रन्थकारोंने लिखा है परन्तु इस विषयमें मै स्वतः सशंकित हूं. वल्लभवंशी राजा कुमारपाल जैनधर्मका बड़ाभारी पुरपकर्ता हो गया है. प्रसिद्ध बौद्ध राजा अशोकके प्रपौत्र महाराजा संपदिने जैनधर्म स्वीकार किया था. व स्वतः अशोक ही बौद्धधर्म स्वीकार करनेके पूर्व जैनधर्मानुयायी था, ऐसा कई पंडितोंका मत है. कर्नेल टॉड साहिबके राजस्थानीय इतिहासमें उदयपुरके घरानेके विषयमें ऐसा लिखा गया है कि, "कोई भी जैन यति उक्त संस्थानमें जब शुभागमन करता है तो रानीसाहिब उसे आदरपूर्वक लाकर योग्य सत्कारका प्रबन्ध करतीं है, यह विनय प्रबन्धकी प्रथा वहां अबतक जारी है. इसका कारण ऐसा-कहा जाता है कि, उदयपुरके इतिहास प्रसिद्ध राणा प्रतापसिंह, अकबरबादशहसे लड़ते २ बहुतही क्लेशित हो रहे थे, उस समय भामासा नामक एक जैन महाशयने वीस हजार फौजकी संतोषप्रद सहायता अत्यन्त आवश्यकतामें आकर दी. उसी समयसे कृतज्ञ उदयपुरका राज्य जैनियोंका ऋणी हो रहा है; दूसरी कथा पन्नादाईकी है यह तो हम सबको विदित ही है. बनवीरके भयसे अपने स्वामीपुत्रकी रक्षा करनेकेलिये अपना जीव जोखममें डालनेवाली पन्नादाईको उस राजपुत्रसहित जिसने आश्रय दिया, वह भासासा नामका पुरुष जैन ही था, ऐसा कहते हैं. मंडपाचल अथवा वर्तमानका मांडू—यहा मुसलमान बादशाहके समयमें मुख्य दिवानगीरीके पद पर एक जैनी ही नियुक्त था. सारांश प्राचीन [illegible]में जैनियोंने उत्कट पराक्रम व राज्यकार्यभारका परिचालन किया है. अर्वाचीन समयमें इनकी राजकीय अवनतिमात्र दृष्टि

गोचर होती है" अर्वाचीन इतिहासमें राज्यवैभव सम्बन्धी स्पर्धामें जैनी लोग बिलकुल नहीं पडे हैं इसका कारण "हिंसानिषेधका तत्त्व इन्होंने मर्यादाके बाहिर कर दिया. इससे राजकीय स्पर्धामें इनका गुजारा नहीं था" यह हो सक्ता है. इस अहिंसा तत्त्वके अमर्याद होनेसे जैनियोंका राज्य किस प्रकार नष्ट हुआ, इसका एक उदाहरण कर्नेल टॉड साहिबने दिया है कि, अनहलवाडके अन्तिम जैनराजा कुमारपाल पर शत्रुकी चढ़ाई होनेपर वह अपनी सैन्य तयार न करके स्वस्थ रहा. इसका कारण क्या? वर्षाऋतुके दिन होनेसे यदि सैन्यमें हलचल कीजाती तो उसके पावोंके नीचे लक्षावधि जंतुओंका विनाश होता यह भीति थी. जैनीलोग जिस

जैनवाङ्मय.

प्रकार प्राचीन कालमें राजकीय उन्नति भोगकर पुनः अवनत दशाको प्राप्त हुये उसी प्रकार इनका वाङ्मय (जैनधर्मका साहित्य वा शासन भी प्राचीनकालमें अत्यन्त सुसम्पन्न स्थितिको प्राप्त होकर वर्तमानमें दुर्दशाग्रस्त हुआ दिखाई देता है. प्राचीन जैनवाङ्मय संस्कृत वाङ्मयके प्रायः बराबर था. धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य, हम्मीर महाकाव्य, पार्श्वा-

(१) यह ऐतिहासिक घटना जो टॉड साहबने लिखी है तो गलत है. क्योंकि राजावोंको प्रजाकी रक्षार्थ अत्यावश्यकता पडनेपर लडाई करनेका निषेध जैनशास्त्रोंमें कहीं नहीं है उसके राज्य जानेका कारण अन्य ही कोई होना चाहिये. यदि टॉड साहबका कहना ठीक है और उसने जीवहिंसाके कारण ही युद्ध नहीं किया हो तो वास्तवमें राजनीतिके विरुद्ध किया है,

भ्युदय काव्य, यशतिलकचम्पू वगैरह काव्य ग्रन्थ, जैनेन्द्र व्याकरण, काशिकावृत्ति व पंजिका, रम्भामंजरी नाटिका, प्रमेयकमलमार्तंड सरीखे न्यायशास्त्रविषयक ग्रन्थ, हेमचन्द्र सरीखे कोश, व इनके सिवाय जैनपुराण, धर्मग्रन्थ, जैन इतिहास ग्रन्थ आदि असंख्य शास्त्र थे। इनमेंसे अभी बहुत थोड़े प्रकाशित हुये हैं और सैकड़ों ग्रंथ अभी अज्ञात हो रहे हैं, अपने ग्रन्थ छापे नहीं जावें कारण छापना यह एक अपवित्र क्रिया है, ऐसी अज्ञानताकी समझके कारण लोग अपने पासके प्राचीन ग्रन्थ व लेख छापनेको नहीं देते हैं। इन संस्कृत ग्रन्थोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे भी जैनियोंने वाङ्मयकी बड़ी भारी सेवा की है। दक्षिणमें तामिल व कानडी (कर्णाटकी) इन दोनों भाषाओंके जो व्याकरण प्रथम प्रस्तुत हुए वे जैनियोंने ही किये। ऐसा "मिसेस एनीबिसेण्ट" का कहना है। सारांश प्राचीन कालके भारतवर्षीय इतिहासमें जैनियोंने अपना नाम अजरअमर कर रखा है। अर्वाचीन समयमें जैनी मात्र राज्यसत्ता अहिंसातत्त्वके कारण छोड़ बैठे हैं तथापि समाजमें प्रेसीडेण्टका स्थान उन्होंने अद्यापि छोड़ा है ऐसा नहीं है। वर्तमान शांतताके समय

---

१ जिस प्राचीन पाणिनीय व्याकरणने तीन जगह मत ग्रहण किया है वह शाकटायन व्याकरण भी जैनाचार्यकृत है। तथा और भी अनेक जैन व्याकरण हैं।

२ गद्य, पद्य, साहित्य, कोश, न्याय, वेदान्तके अनेक ग्रन्थ अभी मौजूद हैं।

३ कर्नाटक भाषाका बहुत बड़ा व्याकरण भट्टाकलंक देवका बनाया हुआ 'राइस' साहबने छपाया भी है। परन्तु वह सब विलायतके विद्याप्रेमियोंने मंगा लिया, इस देशमें मिलना अब दुर्लभ है।

व्यापारवृद्धिके कार्योंमे अग्रेसर होकर इन्होंने अपना वर्चस्व (प्रताप) पूर्ण रीतिसे स्थापित किया है और वर्तमानमें समाज सुधारणा विषयक जागृति भी हुई दिखती है। गत जैनपरिषद्के[1] अधिवेशनके समय हमारे जैनवधुओका समाजसुधारणा व धर्मशिक्षणके विषयमें जो उत्साह दृष्टिगत हुआ था वह सर्वथा अभिनंदनीय था, इसमें शंका नहीं है.

जैनधर्मके सम्बन्धमें हम लोगोंकी अनभिज्ञता.

पृथिवीके अन्य किसीभी धर्मके सम्वन्धमे लोगोकी इतनी विचित्र अजानता नहीं है, जितनी जैनधर्मके विषयमे हो रही है। हमारे देशमें अनुमान २४०० वर्ष पूर्वसे यह धर्म प्रचलित है व हमारे जैनबांधवोंके पूर्वज प्राचीन कालमें ऐसे २ स्मरणीय कृत्य कर चुके है तौ भी जैनी कौन है? उनके धर्मके मुख्य तत्त्व कौन २ से हैं इसका परिचय बहुत ही थोड़े पुरुषोंको होना बड़े आश्चर्यकी बात है; परन्तु इसका कारण वेदमतावलम्बी और जैनियोंमें उपस्थित हुआ द्वेषही होगा ऐसा जान पडता है. "न गच्छेज्जैनमन्दिरम्" अर्थात् जैनमन्दिरमें प्रवेश करने मात्रमे भी महापाप है, ऐसा निषेध उस समय कठोरताके साथ पाले जानेसे जैनमन्दिरकी भीतकी आडमें क्या है? इसकी खोज करै कौन? ऐसी स्थिति होनेसे ही जैनधर्मके विषयमें झूंठे गपोडे उडने लगे. कोई कहता है जैनधर्म नास्तिक है कोई कहता है बौद्धधर्मका अनुकरण

---

१ स्वेताम्बर जैनकानफरैन्स थी दिगम्बरजैनकानफरेन्स (महासभा) पृथक है। वह मथुरामें प्रतिवर्ष इकट्ठी होती है।

है। जब शंकराचार्यने बौद्धोंका पराभव किया तब बहुतसे बौद्ध पुनः ब्राह्मणधर्ममें आगये। परंतु उससमय जो थोड़े बहुत बौद्धधर्मकोही पकड़े रहे उन्हींके वंशज यह जैन हैं। कोई कहता है कि, जैनधर्म इस बौद्धधर्मका शेषभाग नहीं किन्तु हिन्दू-धर्मका ही एक पंथ है, व कोई कहते हैं कि, नग्नदेवको पूजनेवाले जैनी लोग यह मूलमें आर्यही नहीं हैं। किन्तु अनार्योंमेंसे कोई हैं। अपने हिंदुस्थानमें ही आज चौबीस सौ वर्ष पूर्वसे पड़ोसमें रहनेवाले धर्मके विषयमें जब इतनी अज्ञानता है तब हजारों कोससे परिचय पानेवाले व उससे पीछे मनोऽनुकूल अनुमान गढ़नेवाले पाश्चिमात्योंकी अज्ञानतापर तो हंसनाही क्या है? तथापि अपने लोगोंकी अज्ञानताके विषयमें

पाश्चिमात्योंकी विचित्र अज्ञानता

जैसे ऊपर कहा गया वैसेही उनकी भी अज्ञानता हास्यास्पद होनेसे उनमेंके एक उदाहरणोंका नमूना दिखलाना योग्य है। लेफटेंट् कर्नल विलिएम् फ्राकलिनने जैन व बौद्ध धर्मके सम्बन्धमें ईस्वी सन् १८२७ में एक "Researches on the tenets and doctrines of the Jain and Budhists Conjectured to be these Brahmins of Ancient India" ग्रन्थ लिखा है उसमें उन्होंने जैनियोंका ईजिपिशियन लोगोंका वंशज ठहराया है। दूसरे एक मिष्टर कोलियोर नामक साहिबने Scripture Miracles नामक पुस्तकमें जैनशब्दकी जो व्युत्पत्ति दी है वह बड़ी दिल्लगी की है, आप फरमाते हैं 'जैन' शब्द रोमन 'जेनस' शब्दसे बना है 'जेनस' यह रोमन लोगोंका एक देवता है जैसे शिवके उपासक शैव, विष्णुके उपासक वैष्णव,

इसी प्रकार जेनसके जैन ! (धन्य !) एक मिशनरीकी कल्पनाने तो इससे भी अधिक कमाल किया है, आपका कहना है कि, "बायबिलमें (Genesis) अथवा ' सृष्टिकी उत्पत्ति' प्रकरणके चौथे अध्यायमें 'केन' व 'अॅबेल' इन दो बंधुओंकी कथा है; उनमेंसे देवकी शापसे पीड़ित हुए 'केनकी जो सतति वही जैन है' इसमें प्रमाण क्या ? यह कि, केनकी सतति जिस प्रकार विशालशरीर और दीर्घायुषी थी। उसी प्रकार जैन 'तीर्थंकर भी भव्याकृति और दीर्घायुषी थे' यह सब जैनधर्मके अनुसंधान करनेसे मालूम पड़ता है। पहाड़ वगैरहमें जो तीर्थंकरोंकी प्राचीन जैनमूर्तियां पाई जाती है वे बहुतही विशाल आकृतिकी और पुरानी होती है। ग्वालियरके किलेमें जो जैनमूर्तियें मिली है वे बहुतही ऊंची है। दक्षिणमें श्रीरंगपट्टणसे ४० मैलपर चिनरायपट्टण नामक ग्राम है। 'चिनरायपट्टण' यह नाम जिनरायपट्टण, शब्दका अपभ्रंश होगा। ऐसा दिखता है। इस स्थानमें जैनमंदिर है उसमें चौवीस तीर्थंकरोंकी मूर्ति पाई गई है। वे अत्यन्त भव्य हैं। वहांसे पास ही चन्द्रगिरी नामक टेकडीपर दो पादुका विशाल आकृतिकी है। जैनियोंके तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जब

---

(१) चिनरायपट्टणमें जैनमंदिर न होकर वहांसे आठ मीलपर श्रवण वेगगुळ (जैनबिद्री) नामक स्थानपर है। उन सबका नकशा मद्रास प्रान्तके सरकारने छापकर प्रसिद्धकर दिया है।

(२) वहांपर पादुका नहीं है किन्तु ४१ हाथ ऊंचाईकी सुंदर अखड मूर्ति है।

उड़कर देवलोक गये तब उनके यह पादचिन्ह उछल आये थे ऐसा कई लोग कहते हैं*" इसी परसे साहिब बहादुरने केनके वंशज ठहरा डाले हैं। साहिब बहादुरने अपने विधानकी पुष्टिमें और एक प्रमाण दिया है जिसके योगसे केवल जैन ही क्या परंतु कौशिक, अत्रि, कश्यप वगैरह ऋषियोंके वंशज हम लोगोंको भी सिर्फ एक पटिकाके अपने इजिपशियन पूर्वजोंका श्राद्ध करना पड़े। बाइबिलमें कहा है कि, "केनको कोई मार न सके इसलिये देवने उसके मस्तकमें चिन्ह बनाया था। इस कारणसे जैनियोंके व तुम्हारे हमारे सबहीके मस्तकोंमें तिलक होता है। अतएव उक्त मिशनरी साहिबने तुम हम सबोंको इजिप्तमें भटकते

व्याख्यानदाताकी टिप्पणी.

*पार्श्वनाथकी मुक्ति दक्षिणमें हुई यह बात बहुतसे जैनी स्वीकार नहीं करते। मेरे परिचयी एक जैन यतिने कहा कि, बंगालके हजारीबाग जिल्हेमें सम्मेदशिखर पर्वतपर २० तीर्थंकर देवलोकवासी हुए[1] उनमें पार्श्वनाथ भी है। बाकीके चार तीर्थंकर ऋषभदेव, महावीर, वासुपुज्य व नेमिनाथ इनका मोक्ष अनुक्रमसे अष्टापद (कैलास) पावापुर (विहार) चंपापुरी (भागलपुर) और गिरनार (काठियावाड) पर हुआ।

अनुवादककी टिप्पणी

१ देवलोकवासी हुये, ऐसा कहना भूल है. क्योंकि मुक्तात्मा मोक्षस्थान या सिद्धशिलानामक एक स्थान तीन लोकके ऊपरि है वहां जाकर हमेशाके लिये विश्राम करते हैं। फिर कभी उन मुक्तात्माओंका (सिद्धोंका) जन्म मरण नहीं होता. देवलोक जिसमें जैनी लोग सोलह स्वर्ग नव ग्रैवेयक विमान आदि मानते हैं वह भिन्न स्थान है। देवलोकमें गया हुआ जीव भी मनुष्यतिर्यंचादिकोंमें जन्म मरण करता व संसारमें फिरता है इस कारण 'देवलोकवासी हुये' की जगह मुक्तिको गये ऐसा कहना ठीक है।

फिरते केनकी संतति ठहराये तो उक्त साहिवका क्या कर सक्ते हो ? तीसरे एक मॉरिस नामक प्राचीन विद्याविशारदने इस अनुमानका पुष्टीकरण कुछ निरालीही रीतिसे किया है। 'गौतमबुद्ध व इजिप्तका प्रसिद्ध विद्वान् साधु पुरुष हर्मिस् यह एक ही थे। कारण, हर्मिस्ने जिस प्रकार लेखनकलाका प्रचार कर विविध विषयों-पर ग्रन्थ निम्मार्ण किये और इतना सम्पादन किया हुआ ज्ञान चिरकाल स्थिर रहने व लोगोंको उपयोगी पड़नेके लिये वहुतसा परिचय शिलास्तंभोपर खोद दिया। इसी प्रकार बौद्ध व जैन लोगोंने विद्याका पुरस्कर्तृत्व अपने ऊपर लेकर अनेक शास्त्र ग्रन्थ लिखे और खोदकर शिलास्तंभ स्थित किये है, अर्थात् यह शिलास्तभोकी कल्पना जैनी लोक इजिप्तसे लाये, ऐसा माननेमें और हर्मिस् व जैनोंकी एकता कर डालनेमें मॉरिस साहिबकी कल्पनाको कुछ भी प्रयत्न नही पड़ा !

जैनधर्मके उत्पत्तिकाल के सम्बन्धमें भिन्नमत.

जिस प्रकार जैनियोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भिन्न २ लोगोने पृथक् पृथक् तर्कनायें की है उसी प्रकार उनके धर्मकी उत्पत्ति कालके विषयमें भी भिन्न २ मत है कोई कहता है कि, जैनधर्म बिलकुल नवीन अर्थात् अनुमान बारहवी अथवा तेरहवीं शताब्दीका है, कोई कहता है वह बारह सौ वर्षका है; कोई उसे बौद्ध धर्मका समकालीन कह कर छोड़ता है; और कोलब्रुक साहिब तथा कितनेक जैन पंडित उसे बौद्धधर्मसे भी पहि-लका ठहराते हैं, इन सबोंकी एकवाक्यता करना कठिन है, और प्रत्येक मतमें कहां २ भूल है उसे दिखलाने योग्य विद्वत्ता भी

मुझमें नहीं है। तथापि जैनधर्मका कालनिर्णय करनेमे आवश्यकीय थोडेसे प्रमाण मै आगे उपस्थित करूंगा। उससे श्रोताओंको अपने २ मत निश्चित करना चाहिये।

'जैन'शब्दकी व्युत्पत्ति व अर्थ.

प्रथम जैनधर्ममें क्या है यह हमें देखना चाहिये, 'आनन्दगिरिकृत' 'शंकरविजयमें' 'जैन' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है.—"जीतिपदवाच्यस्य नेति पदेन न पुनर्भवः तस्माज्जन्मशून्या जैनः" परन्तु स्वत जैन लोग इस शब्दकी व्युत्पत्ति निराली देते है। वह इस प्रकार—"रागद्वेषादिदोषान् वा कर्मशत्रुञ्जयतीति जिन तस्यानुयायिनो जैना" अर्थात् जिन्होंने काम क्रोधादि अठारह दोषोंको अथवा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय आदि कर्मशत्रुओंको जीते वे 'जिन' और उनके उपासक वे जैन कहाते है। कामक्रोधादि दोषों व कर्म शत्रओंको जीतनेवाले जिन आज पर्यन्त चौवीस हुए है, उन्हें 'तीर्थकर' ऐसी संज्ञा है। इन चौवीस तीर्थंकरोंके नाम ये हैं,

चौवीस तीर्थंकर.

ऋषभदेव (प्रथम जिन अर्थात् तीर्थंकर और जैनधर्मके सस्थापक), २ अजित, ३ संभव. ४ अभिनन्दन, ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ पुष्पदन्त (सुविधि) १० शीतलनाथ ११ श्रेयाँस १२ वासुपूज्य, १३ विमल, १४ अनन्त, १५ धर्म, १६ शांति, १७ कुंथु, १८ अरह १९ मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रत, २१ नमिनाथ, २२ नेमिनाथ, (अरिष्टनेमी), २३ पार्श्वनाथ, २४ वर्द्धमानस्वामी (महावीर) इससे पहिलेके व अत्यन्त प्राचीन तीर्थंकर ऋषभदेव

जैनधर्मके संस्थापक थे ऐसा दिखता है, ' भागवतके ५ वें स्कंधमें ऋषभदेव दिगम्बर होकर जैनधर्मके संस्थापक थे, ऐसा यद्यपि स्पष्ट नहीं लिखा है तौभी उसका उदाहरण देख अर्हत् नामक राजाने पाखंडमतका प्रचार किया ऐसा कहा है। अर्हत् नामक राजा कोई सुना नहीं गया; परन्तु जैनी ऋषभदेवको ही अर्हत् कहते है। इसपरसे ऋषभदेव जैनधर्मके संस्थापक थे, यह सिद्धान्त अपनी भागवतसे भी सिद्ध होता है। पार्श्वनाथ जैनधर्मके संस्थापक थे, ऐसी कथा जो प्रसिद्ध है वह सर्वथा भूल की हुई है, ऐसा कहनेमे कुछ हरकत नहीं है। कोलब्रुक, जॅकोबी सरीखे विद्वान् शोधकोंकी समझ ऐसी क्यों हुई सो कह नहीं सक्ते। ऐसेही वर्द्धमान अर्थात् महावीर भी जैनधर्मके सस्थापक नहीं हैं। तो चौवीस तीर्थकरोंमेंसे वह एक प्रचारक थे। ' आर्यविद्यासुधाकर ' ग्रन्थमें इस विषयका उल्लेख है, उसमें भी उसके विषयमें ' प्रचारयद्धर्मम्' ऐसा कहा है। ये वर्द्धमानस्वामी गौतमबुद्धके समकालीन थे, वह बौद्धके गुरु थे ऐसा भी अनेकोंका कहना है; कईएक तो ऐसा भी कहनेवाले है कि, गौतमबुद्ध मूलमे जैनधर्मी था; परन्तु पीछे उसमे व जैनियोंमें मतभेद पड़नेसे उसने स्वकीय (अपना) बौद्ध धर्म स्थापित किया।

जैनियोके मुख्य ४५ शास्त्र है। उन्हें सिद्धान्त किंवा आगम

---

(१) ये सब ग्रंथ जैनोंका एक भेदाविशेष जैनाभास जिनको आजकल स्वेताम्बर जैन कहते है उनके हैं। सनातन जैनियोंके ग्रन्थोंके नाम भी ग्यारह अंग चौदह पूर्व है। परन्तु वे इतने बड़े थे कि, उनका कागजमें लिखना असंभव था। वे श्रुतकेवली नामक ऋषियोंके हृदयस्थ ही रहते थे। उनका लोप उनही ऋषियोंके साथ हो गया। उनके पछिके

जैन शास्त्र.

कहते हैं। भद्रबाहुस्वामी नामक एक विद्वान् जैन हो गये है उन्होंने यह ग्रन्थ लिखे हैं, ऐसा लोग कहते हैं। इन ४५ शास्त्रोंमें ११ अग, १२ उपाङ्ग, १० प्रकीर्णक, ६ छेद, ४ मूलसूत्र, और २ अवान्तर सूत्र हैं।

जैनधर्मके मुख्यतत्त्व

जैनधर्मके मुख्य तत्त्व सात है, १ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्जरा, और ७ मोक्ष इनमें पाप और पुण्य दो मिलानेसे नव पदार्थ हो जाते हैं। जिसके चैतन्यगुण है वह जीव, शरीरादिक जड़ पदार्थ जिसमें अन्तर्भूत होते है वह अजीव "शुभाशुभकर्मद्वाररूप आस्रवः" अर्थात् शुभ अथवा अशुभ कर्मबंध होनेके जो द्वार उन्हें आस्रव कहते है. "आत्मकर्मणो-अन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्ध" अर्थात् आत्माके प्रदेश व कर्मोंके प्रदेशोंका परस्परमें प्रविष्ट होना सो कर्मबंध; "आस्रव निरोधलक्षण संवर." अर्थात् आत्माके स्थानमें नवीन कर्म न आने

आचार्योंका क्रमसे न्यून ज्ञान होता रहा। रोंपमें जब एक २ अगके पाठी रह गये और भविष्यत्में और भी हीन ज्ञानी होवेंगे तो सनातन पवित्र जैनशासनका दुनियांपरसे लोप हो जायगा। ऐसा समझकर सब आचार्याने मिलकर अपनी स्मृतिके अनुसार उन ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंका सार संग्रह करके ग्रथ रचना करना प्रारभ किया। उनका भी अन्यायी राजावोंके राज्यमें तथा शकराचार्यादिके समयमें प्राय लोप हो गया। उनमेंसे बचे बचाये ग्रंथ है। उनमेंसे मुख्य २ धवल, जयधवल महाधवल, गोमट्टसार, त्रिलोकसार, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, न्यायकुमुद चंद्रोदय, न्यायविनिश्चयालकार, प्रमेयकमलमार्तंड, अष्टसहस्री आदि हजारों बडे २ ग्रथ सस्कृत व प्राकृत भाषामें अवभी है।

देना अथवा आस्रवका निरोध करना इसे संवर कहते है;* और सम्पूर्ण कर्मोंका नाश होना यह मोक्ष है । जीवोंके गुणोंको ढाकनेवाले कर्मोंके आठ भेद है और इन आठ ही प्रकारके कर्मोंके नाश करनेके मार्गको मोक्षमार्ग कहते है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, व सम्यक्चारित्र यह उस मार्गके तीन द्वार है । अर्थात् इन तीन साधनोंके योगसे सम्पूर्ण कर्मबंधोका नाश होकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है; अतएव इन तीन साधनोंका समुच्चयसे रत्तत्रयी ऐसा नाम

रत्तत्रयी

दिया है । पहिला साधन सम्यग्दर्शन, 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' अर्थात् पूर्वे कहे हुए जीव अजीवादि सप्त तत्वोंके अर्थमें श्रद्धान रखना; दूसरा साधन सम्यग्ज्ञान अर्थात् धर्मका संशय विपर्यय रहित यथार्थज्ञान और तीसरा साधन सम्यक्चारित्र अर्थात् निर्दोष, पवित्र आचरण ये आचरण श्रावक और मुनि इन दोनोंके लिये पृथक् २ कहे गं

श्रावक और मुनी.

हैं। श्रावक अर्थात् गहस्थाश्रमी, इस श्राव शब्दसे वर्तमानमें 'सरावगी' ऐसा अप भ्रंश हो गया है। हालमें सराफी और व्य

---

* लेखक महाशय यहा निर्ज्जराका लक्षण लिखना अनायास भू गये है उसे हम लिख देते है। "एकदेशकर्मक्षयलक्षणा निर्जरा" अर्था पूर्वसंचित कर्मोका अंशतः (एकदेश) नाश करना सो निर्जरा है।

(१) यहांपर 'धर्मका ऐसा कहनेसे स्पष्ट नहीं होता। इसकी जग जीवादि सप्त तत्त्वों अथवा आत्माके स्वरूपको अथवा सच्चे देवशा गुरुको परीक्षापूर्वक संशय विपर्यय अनध्यवसाय रहित यथार्थ जानना स सम्यग्ज्ञान है, ऐसा समझना चाहिये।

पार करनेवाले जैन अधिकतर सरावगीही है। जैनियोंका दूसरा धर्म[2] ओसवाल ये लोग बहुधा धान्यका[3] व्यापार करनेवाले है। अस्तु, श्रावकोंके दो वर्ग है। एक व्रती अर्थात् कितनेयक नियमित व्रतोंको भलीभांति कठिनाई झेलकर पालनेवाले, और दूसरे अव्रती अर्थात् वे व्रत उतनी कठिनतासे न पालनेवाले, व्रती श्रावकके क्रमानुसार ११ सीढिया है। उन्हें प्रतिमा कहते हैं। प्रथमसे लेकर छठवीं सीढीतक जो पहुंचे वे जघन्यश्रावक, छठवींसे नवमी पर्यन्त मध्यम श्रावक और आगेके उत्कृष्ट श्रावक होते हैं।

श्रावक और मुनि किंवा यति सम्बन्धी नियम अलग २ है। इसका अर्थ इतना ही लेना चाहिये कि, मुनियोंको वे नियम कडाईके साथ पालना, व श्रावकोंको कोई मर्यादा पर्यन्त पालना, उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य यह मुनिको सम्पूर्ण रीतिसे पालना चाहिये। और श्रावक अर्थात् गृहस्थी मनुष्योंको कुछ विवक्षित मर्यादातक पालना चाहिये। इसीप्रकार अहिंसा, सुनृत अर्थात् सत्य भाषण,

---

(१) 'सरावगी' कोई जाति नहीं है। श्रावकका अपभ्रंश शब्द है। जैन जाति ८४ प्रकारकी है। जैसे खण्डेलवाल, बघेरवाल, जैसवाल, पोरवाल, पद्मावती पोरवार, परवार, पल्लीवार, अग्रवाल इत्यादि। मारवाडमें प्राय: खण्डेलवालोंको कोई २ 'सरावगी' कहते है।

(२) यहां धर्म नहीं कहकर 'जाति' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि 'ओसवाल' ८४ जातियोंमेंसे एक जाति है। इनका धर्म प्राय: श्वेताम्बरी साधुवोंका चलाया हुवा है। इस कारण इनको श्वेताम्बरीय कहते है।

(३) जैनियोंकी सब जाति ही प्रायः सर्व प्रकारके उत्तम व्यापार करती है। हां जिस रोजगारमें जीवोंकी हिंसा और कोई महा आरंभ हो तो ऐसा रोजगार जैन जाति कम करती है।

अचार्य अर्थात् चोरीका निषेध, अपरिग्रह अर्थात् लोभका अभाव इनके सम्बन्धमें समझना. यतिको मात्र सर्व सङ्गसे अलिप्त हो रहना चाहिये।

अहिंसा तत्त्व.

जैनधर्ममें अहिंसा तत्त्व अत्यन्त श्रेष्ठ माना गाया है। बौद्धधर्म व अपने ब्राह्मणधर्ममें भी यह तत्त्व है तथापि जैनियोंने इसे जिस सीमातक पहुंचा दिया है वहांतक अद्यापि कोई भी नहीं गया है। कभी २ तो ये लोग क्षुद्र जीवजंतुओंकी इतनी रक्षा करते है कि, उनका वर्तन उपहासपात्र हो जाता है। किन्हीं २ प्रसंगोपर मनुष्योंको अनर्थकारकतक हो जाता है। मनुष्योंके प्राणघातक सर्पादि प्राणी हाथमें पड़ जावें तो मारने नहीं देते। ऐसे दे

(१) गृहस्थके लिये (श्रावकके लिये) अपरिग्रहव्रत नहीं है किंतु इसकी जगह परिग्रहपरिमाण व्रत रहता है। अर्थात् धनधान्य दश प्रकारकी परिग्रहका आवश्यकतानुसार परिमाण कर लिया जाता है कालान्तरमें उससे अधिककी आवश्यता पडे तो ग्रहण नहीं कर सक्ता।

(२) क्षुद्र जीव, चिंवटी, कीट, मच्छर, खटमल, पीसू वगैरह होते हैं उनकी अधिक रक्षा करना 'उपहासास्पद है' ऐसा कहना उचित नहीं है। कारण कैसे ही क्षुद्र जीव क्यों न हो अपने सुखकेलिये उनको मारना व पीडा देना सर्वथा अनुचित है। उनका वध नहीं करके अन्यान्य उपायोंसे दूर करना चाहिये। निःसहाय अनाथ क्षुद्र जीव तो दूर ही रहो किंतु सर्प, विच्छु, व्याघ्रसिंहादि हिंस्र जंतुओंको भी मारना सर्वथा अनुचित है। इसके सिवाय अपने एक दो चार हिंस्र जंतुओंको मारनेसे समस्त जगतके हिंस्र जंतु नष्ट हो सक्ते है सो भी तो नहीं है। इस कारण उनका वध नाहिं करके अन्यान्य उपायोंसे अपनेको बचा लेना ही सर्वथा योग्य है।

ह छुडा देते है, मत्कुणों (खटमलों) का पींजरापोल बनाके
में मोटे ताजे आदमीको पैसे देकर सोनेके लिये भेजते है, ऐसा
कवार सुना था परन्तु यह बात झूंठ है, ऐसा मेरे एक जैनमित्रने
हा है। कितनेक जैन तो हिंसा अपने हाथसे न होने पावे इसके
ये अनेक चेष्टा करते हैं इसका एक नमूनेके तौरपर उदाहरण
हता हूं, यह किंचित् अत्युक्तिका है, तथापि उससे जैनियोंकी
अहिंसाविषयक सावधानी दृष्टिगत हुएविना नहीं रहेगी। गर्मीके
दिनोंमें गाय, भैंस वगैरह पशु गर्मीका संताप दूर करनेकेलिये वृ-
क्षोंकी छायामें आरामसे बैठी हुई किसी भाविक जैनीने देखी, तो
वह तत्काल ही उन्हें उस छायासे उठा देता है। कारण, पशु
छायामे आरामसे बैठेंगे तो वे वहां पेशाब व गोबर करेंगे, और
पीछे उस मलमूत्रमें कीडे उत्पन्न होंगे, वे यत्र तत्र फैलेंगे व अ-
न्तमें धूपके संतापसे मर जावेंगे, इस अपेक्षासे पशुओंको छायामे
न बैठने देनेसे जीवोंकी हिंसा अवश्य ही टलेगी[1]। कहिये यह
कितनी दूरदर्शिता और कितनी यह भूतदया है? अहिंसा तत्त्व पालने-
के लिये' ढूंढिये नामक जैनशाखाके लोक महोत्सर्गके समय जो घिनावना
कार्य करते है, उस बीभत्स व्यापारके वर्णन करनेमें संकोच होता
है। किसी भी उत्तम बातकी अनुसंधानतापूर्वक चलनेमें भी मित-
व्ययिता व रीतिनीतिका विचार न किया जावे तो विपरीत परिणाम
होता है, यह बात इन लोगोंके लक्षमें अभीतक नहीं आती, ये

---

(१) जिस प्रकार खटमलोंके पिंजरापोलकी बात सर्वथा असत्य है, उसी प्रकार गौ बैलोंका छांहमेंसे उठा देना भी सर्वथा झूंठ। और भिन्न धर्मियोंकी अत्युक्ति मात्र है।

'ढूंढिये[1]' लोक ठंडा पानी नहीं पिते, कारण ठंडे पानीमें सजीव प्राणी रहते है। अतएव वे भातका मांड किंवा शाकका पानी पीते है। परन्तु पानी तप्त करते लक्षावधि जीव उष्णेतामें तड़फकर मरजाते है। यह उ

---

(१) ढूंढिये लोग-स्वेताम्बरीजैनियोंमेंसे निकला हुवा एक छोटासा फिरका है। यह मत कोई २५० वर्षासे निकला हुवा जिनमतके शास्त्रोंसे सर्वथा विरुद्ध है। इनके साधु ठडा पानी नही पीते। बाकी जैनी गृहस्थोंको ठंडा पानी योग्य वस्त्रसे छानकर एक मुहूर्तपर्यत पीनेकी सर्वत्र आज्ञा है

(२) हिंसा ४ प्रकारकी है। १ संकल्पी हिंसा, २आरभी हिंसा, ३ उद्यमी हिसा, और ४ विरोधी हिंसा। अपने चित्तसे चाहकर जीवोंको मारना है तो **संकल्पी हिंसा** है। गृहस्थके कूटने, पीसने, रसोई बनाने, बुहारी देने वगैरह आरंभमें यत्नाचारपूर्वक प्रवर्त्तनेपर भी जीवोंकी हिंसा होती है उसको **आरंभी हिंसा** कहते है। धान्य वैगरह भरने आदि रोजगार करनेमें जो जीवहिंसा होती है उसको **उद्यमी हिंसा** कहते है और राजा लोगोंको प्रजाकी रक्षार्थ देशकी शातिस्थापनार्थ दुशमनकी फौजसे लड़ाई वगैरहके करनेमें वा विशेष प्रबध करनेमें जो हिंसा होती है उसको **विरोधी हिसा** कहते है। इन चार प्रकारकी हिंसाओंमेंसे गृहस्थ श्रावक केवलमात्र सकल्पी हिंसाका त्याग कर सक्ता है। अन्य तीन प्रकारकी हिंसाओंका गृहस्थोंको यथाशक्ति त्याग करनेका उपदेश है, सो गृहस्थ जहांतक बनता है समस्त कार्योंमें दया रखकर यत्नाचाररूप प्रवर्तते है यत्नाचारसे प्रवर्तते हुए भी जो कुछ हिंसा होती है उसके पापको दूर करनेकेलिये गृहस्थको प्रतिदिन देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम पालना, यथाशक्ति तप करना, दान देना ये षट्कर्म करनेकी आज्ञा है। तथा प्राति दिन दोनों समय सामायिक (संध्यावंदन) करनेकी आज्ञा है। उसमें दिनभरके पापोंकी सध्यासमय और रात्रिके हिंसादि कर्मोंकी प्रातःकालकी सामायिकमें आलोचनादि करके गृहस्थको हिंसादि पापोंको टालकर पुण्यका भाग अधिक रखनेकी आज्ञा है। सो बहुधा गृहस्थ जो

लोगोंकी समझमें नहीं आता, यह आश्चर्य है। पानीका एक बूंद लेकर सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे देखो तो उसमें कितने असंख्य जीव विलविलाते दिखते है ? पानी गरम करनेसे यह जीव अवश्य ही मरते है, परन्तु अहिंसातत्त्व पालनेवाले जैनी ठंडा पानी नहीं पीते। अर्थात् वे अहिंसाके लिये हिंसा करते है, ऐसा कहना चाहिये। खाज, क्षय, प्लेग, विषहरी ताप वगैरह रोग जंतुओंके विकारसे उद्भवित होते है, ऐसा आजकालके व्याक्टेरियॉ लोजिष्ट (जान्तुशास्त्रज्ञ) पुरुषोंका कहना है, इन रोगोंकी औषधि करना मानो इन जंतुओंको मारना है। अच्छा, यदि इन जंतुओंको नही मारें तो वे मनुष्योंके प्राणोंकी बलि लेते हैं। ऐसे समयमें औषधि न करना मनुष्यके जीवकी कुछ कीमत ही नहीं समझना है। प्राणीमात्रपर दया करना यह सामान्य विषय नहीं है सो ठीक है, तो भी अहिंसातत्त्व कोई मर्यादित रीतिसे पाला जाय, तब ही श्रेयस्कर है, नहीं तो वह हास्यास्पद हो जाता है।

विवेकी हैं, यथाशक्ति इन नियमोंको पालते है, इस कारण गृहस्थको 'यत्नाचारपूर्वक योग्य वस्त्रसे जलको छानकर जीवोंको उसी कूये, बावडी तालावमें पहुंचाकर गर्म करनेमें हिंसा बहुत थोडी होती है। वह भी गृहस्थके तजनेयोग्य संकल्पी हिंसासे बाहर है और गृहस्थके षट्कर्म सामायिकादि करनेसे वह दोष टल जाता है। साधु किसी प्रकारकाभी आरंभ वा हिंसाकर्म नहीं करते गृहस्थ अपनेलिये रसोई आदिक जल गर्म करने आदिका आरंभ करता है। मुनि उसीमेंसे जल, भोजन, भक्तिपूर्वक देनेसे ग्रहण करते है।

अहिंसाके कारण जैनियोंमें मांस भक्षण सर्वथा ही वर्ज्य है; इसम कुछ कहना ही नहीं है, और इसी कारणसें मधु (शहद) व मक्खन भी जैनशास्त्रोंमें निषिद्ध माने गये है। मधु मक्खियोंके छत्तेमेसे निकालनेमें असंख्य मक्खियें प्राण देती है। इसलिये मधु निषिद्ध है और मक्खन दहीसे निकलता है व दही जो है सो दूधका विकार है उस दहीमें उत्पन्न हुए अत्यन्त सूक्ष्म जंतुओंके बिलौनेसे मक्खन होता है। ऐसा पदार्थवेत्ता शास्त्रज्ञोंका मत है इसलिये मक्खन निषिद्ध ठहरा। परन्तु इस (Fermentation) पद्धातिका अर्थात् जंतु उत्पन्न करके (महुवे आदि पदार्थोंको सड़ाकर) तयार किया हुआ मद्य जैनशास्त्रोंमें निषिद्ध माना हुवा नहीं दिखता, यह बडा आश्चर्य है। (१) किंतु जैनियोंमें मद्यपान निषिद्ध माना हुआ न होनेपर भी उनकी जातिमें मद्यपा

निषिद्ध माने हुए पदार्थ.

---

(१) 'जैनशास्त्रोंमें मद्यपानका निषेध माना हुवा नहीं दीखता' ऐसा व्याख्यानकारका मत है सो भ्रमात्मक है। ऐसा लिखनेका कारण यह दीखता है कि, जैनशास्त्रोंकी प्राप्तिकी सुलभता न होनेके कारण जैनाचार्यका कोई भी ग्रन्थ व्याख्यानकारके देखनेमें नहीं आया होगा। यदि जैनोंके श्रावकाचार देखनेमें आते तो ऐसा कदापि व्याख्यानदाता नहिं कहते। यह भिन्नधर्मी विद्वानोंकी भूल है जो जैनियोंके सर्वोत्तम ग्रन्थ देखनेसे कोशों भागते है पाठकोंका भ्रम दूर होनेकेलिये मद्यपान निषेधके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते है।

जैनधर्ममें गृहस्थी और मुनिके (साधुके) दो प्रकारके गुण कहे है। एक मूलगूण दसरे उत्तरगुण। इनमेसें उत्तरगुण किसीसे धारण नहिं किये जाय तो विशेष हानि नही, परंतु मुलगुण तो गृहस्थी और साधुको अवश्य ही धारण

नका प्रचार बिल्कुल नहीं है और हिन्दुओंके धर्मशास्त्रमें वह निषिद्ध माना जानेपर भी हम लोगोंमे इसका व्यसन अधिकतासे होता जाता है, यह विरोध भी बडी दिल्लगीका है।

करना चाहिये गृहस्थीके मूलगुण ८ हैं। साधुके मूलगुण २८ है। गृहस्थीके मूलगुण यथा—

समन्तभद्राचार्यकृत रत्नकरंडश्रावकाचारमे,

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपचकं।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमः॥ १॥

अर्थ—मद्य मास और मधु इन तीनोका त्याग करना और पाच अणुव्रत पालना इस प्रकार गृहस्थीके आठ मूलगुण गणधरोंने कहे हैं।

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्य च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः॥ २॥

समन्तभद्राचार्यकृतरत्नकरण्डश्रावकाचारे

अर्थ—जिनेश्वरके चरणोंमें शरण होनेवाले मनुष्योंको त्र[illegible]वोंकी हिंसा टालनेकेलिये मधु और मासका त्याग करना और प्रमा[illegible] दूर करनेके लिये हिंसाके कारण मद्यका त्याग करना चाहिये।

द्यूतमांससुरावेश्याखेटचौर्यपराङ्गना।
महापापानि सप्तव व्यसनानि त्यजेद्बुध॥ [illegible]॥

पद्मनन्दिपञ्चविंशतिकामें।

अर्थ—जूआखेलना, मांसभक्षण, सुरापान, शिकार खेलना [illegible]गमन चौर्य, परस्त्रीगमन ये सात व्यसन महा पाप हैं, अत इनको [illegible]।

मद्य मांस क्षौद्रं पञ्चोदुम्बरफलानि यत्नेन।
हिंसाव्युपरतिकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव॥ ६॥
मद्यमोहयतिमनोमोहितचित्तस्तुविस्मरतिधर्म
विस्मृतधर्मा जीवो हिंसामविशंकमाचरति॥ [illegible]॥

अमृतचन्द्रसूरिकृतपुरुषार्थसिद्ध्युपाये।

जैनियोंकी शास्त्रोक्त दिनचर्य्या इस प्रकार होना चाहिये । उन्हें

शास्त्रोक्त दिन-चर्या.

प्रातःकाल शीघ्र ही उठना चाहिये । मुख वगैरह धोनेसे पहिले मंत्रका पाठ करना और वह पाठ अंगुलियोंपर गिनना । इष्ट-

---

अर्थ-मद्य, मांस, मधु और पांच उदुम्बरफल ये सब हिंसाका त्याग करने वालोंको यत्नपूर्वक सबसे पहिले त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥ मद्य मनको मोहित (विचाररहित उन्मत्त) करता है । और उन्मत्त पुरुष धर्मको भूल जाता है अर्थात् धर्मरहित हो जाता है । धर्मरहित निर्भय स्वच्छंद होकर हिंसाको आचरण करने लग जाता है । इसकारण मद्य सर्वथा तजनेयोग्य है । इसप्रकार आठ मूलगुण कथन करके कहते है कि—

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनिपरिवर्ज्य
जिनधर्मदेशनायाःपात्राणि भवन्ति शुद्धधियः

अर्थ—जो मनुष्य उपर्युक्त आठ पापके स्थानोको त्याग कर देता है वह ही निर्मल बुद्धिका धारक जिनधर्मके उपदेश पानेक पात्र है । अर्थात् जबतक इन आठ द्रव्योंका त्याग नही करे तबतक उस मनुष्यको जिन धर्मका उपदेश नहिं लग सक्ता ।

हिंसाऽसत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्चवादरभे-
दात् । द्युतान्मासान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट स-
न्त्यमी मूलगुणाः ॥

श्रीजिनसेनाचार्यः

अर्थ—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पांच पापोंका स्थूलपणें त्याग करके जूआ, मांस मद्य ये छांडने गृहस्थके आठ मूलगुण हैं.

हन्यते येन मर्यादा बल्लरीव दवाग्निना ।
तन्मद्यं न त्रिधा पेयं धर्मकामार्थसूदनम् ॥

अमितगत्याचार्यकृतधर्मपरीक्षामें ।

देव, गुरुदेव, धर्म और अपने कर्त्तव्यका स्मरण करना; पश्चात् तीर्थंकरोंका ध्यान करना; फिर आज मैं अमुक २ विषयसेवन नहीं करूंगा इसकी प्रतिज्ञा लेना। उदाहरणार्थ मैं आज इतने भातसे अधिक भात नहीं खाऊंगा, किंवा इतने (सेर भर अथवा दो सेर) पानीकी अपेक्षा अधिक पानी नहीं पिऊंगा। अमुक शाक नहीं खाऊंगा, इतने समयसे अधिक बैठूंगा नहीं। अमुक समयसे अमुक समयतक किसीसे वचनालाप नहीं करूंगा, मौनव्रत धारण करूंगा। ऐसी शपथें लेनेका उद्देश्य यह दिखता है कि, मनुष्यको अपने मनको वशमें रखनेका अभ्यास होवे, इसे आत्म संयमका पाठही कहना चाहिये। अपने हिन्दूसमाजमें भी स्त्रिया चातुर्मासमें चान्द्रायणादि नाना प्रकारके व्रत करती है। यह व्रत करनेकी चाल पहिले बहुधा इसी स्तुत्य उद्देश्यसे प्रचलित हुई है, ऐसा जान पडता है। इस आत्मसंयमनकी दृष्टिसे देखनेमें व्रत उत्तम है ऐसा कहना पडता है; और आत्मसंयमन जितना स्त्रियोंको उतनाही पुरुषोंकोभी हितकर होनेसे स्त्रियोके समान पुरुषोंको भी व्रत करना चाहिये, इसमें संदेह नहीं, परन्तु हमारे भाई व्रत करते हैं तब क्या यह आत्मसंयमनका उद्देश्य यथार्थमें उनके ध्यान व मनमें रहता है? यदि इस विषयमे किसीसे पूछा जावे तो, 'नहीं' यही उत्तर मिलेगा

अर्थ—जिस मद्यके द्वारा दावानलमें लताकी समान लोकमर्यादा नष्ट हो जाती है। ऐसे धर्मअर्थकामको नष्ट करनेवाले मद्यको कदापि नहीं पीना चाहिये।

इत्यादि प्रत्येक श्रावकाचारमें सबसे पहिले हिंसकी खानि मद्य, मांस मधु इन तीन अभक्षोंके त्याग करनेका उपदेश है।

यह निश्चित है, कहनेको तो उपोषण (उपवास) और नानाप्रकारके पदार्थ डकार आनेतक खाना, इसे यदि आत्मसंयमन कहना है, तो इसमें कुछ भी विवाद नहीं है।

प्रत्येक जैनीको निम्नलिखित १२ बाते लक्ष्यमें रखना चाहिये ऐसा कहा है। इन्हें बारह भावना अथवा द्वादशानुप्रेक्षा कहते है।

भावना अथवा अनुप्रेक्षा.

(१) इस संसारमें स्थिर कोई नहीं है। सब क्षणभगुर है इसे '**अनित्यानुप्रेक्षा**' कहते है।

(२) इस संसारमें जीवको किसीका सहारा नहीं है। हम जैसा कर्म करेंगे वैसा फल भोगेंगे, इसे **अशरणानुप्रेक्षा** कहते है।

(३) पूर्व जन्मोंमें हमने अनेक दुःख भोगे अब हमें इस दुःखसे छुट्टी पानेकेलिये प्रयत्नशील होना चाहिये। यह **संसृति**भावना है।

(४) हम इस संसारमें अकेलेही है। यह **एकत्व**भावना है।

(५) संसारमें सम्पूर्ण वस्तुएँ हमसे भिन्न है। यह **अन्यत्व**भावना है।

(६) यह शरीर महा अपवित्र है। इसका क्या अभिमान करना? ऐसा मानना यह **अशुचि**भावना है।

(७) जिनके योगोसे नवीन कर्म उत्पन्न होते है ऐसे विचार, उच्चार व आचारोंका चिंतवन करना, यह **आस्रव** भावना है।

(८) नवीन कर्मोंसे आत्मा बद्ध न होने पावे, ऐसे उपायोंकी योजना करना, यह **संवर**भावना है।

(९) बंधे हुए कर्मोंसे छुटकारा पानेके उपायोंकी योजनाका चिन्तवन करना यह **निर्ज्जरा**भावना है।

(१०) यह संसार कौन २ द्रव्योंसे बना है व इसके तत्त्व कौन २ हैं ? इत्यादि बातोंका विचार करना, यह **लोक**भावना है।

(११) रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीन रत्नोंके अतिरिक्त इतर पदार्थ संसारमें सुलभतासे प्राप्त हो सक्ते हैं। ऐसा समझना, यह **बोधिदुर्ल्लभ** भावना है।

(१२) रत्नत्रय ही संसारमें **यथार्थसुखदायक** है ऐसा मानना, यह **धर्म**भावना है।

संस्कार अथवा क्रिया.

अपने धर्ममें जिस प्रकार सोलह संस्कारोंका वर्णन है, उसी प्रकार जैनियोंमे ९३ क्रिया है, उनमें बालकके केशवाय अर्थात् शिखा रखना, पांचवें वर्षमे उपाध्यायके पास विद्यारंभ कराना, आठवें र्ष उसे गलेमें यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहिराना व ब्रह्मचर्य्यपूर्वक विद्याभ्यास करते रहनेका उपदेश देना इत्यादि विषय जैसे अपने र्मशास्त्रोंमें हैं, वैसे ही जैनशास्त्रोंमेंभी हैं. परन्तु हम लोगोंमें जैसे सम्पूर्ण संस्कार नहीं किये जाते हैं, मुख्य २ माने जाते हैं वैसे ही जैनियोंकी भी दशा है; सैकड़ों जैनी तो यज्ञोपवीतका संस्कार तक नहीं करते।

यतिधर्म श्रावकधर्मसे कठिन है, इस धर्ममें नेम धर्मादि बहुत ज्यादा कहे गये हैं। जैनियोमें मुख्य दो पंथ है—१ दिगम्बरीय व २ श्वेताम्बरीय, फिर दिगम्बरियोंमें बीसपंथी अर्थात् मूर्तिको चरणोंमें केशर लगानेवाले व तेरहपंथी अर्थात् मूर्तिको केशर बिलकुल न लगानेवाले ऐसे दो भेद हैं। श्वेताम्बरियोंमें भी ढूंढ़िये, और संवेगी (पीताम्बरी) अर्थात् पीतवस्त्र परिधान करनेवाले ऐसे दो भेद है, इनमेंसे श्वेताम्बरियोंमें पुरुष व स्त्रियां दोनों यतिधर्म ग्रहण करते है, दिगम्बरियोंमें स्त्रियां यति नहीं होतीं (१) प्रत्येक यतिको निम्नांतिक दशलाक्षणिक धर्म पालना चाहिये।

यतिधर्म

खंती मद्दव मुत्ती तव संजमोय बोधव्वे।
सच्चं सोयमकिंचण च बम्भंच जइधम्मो ॥

(१) खंती—क्षान्ति व क्षमाधर्म—किसीके द्वारा अपमान पाकर क्रोध न करना।

(२) मद्दव—मार्दव—नम्रता धारण करना, गर्व नहीं करना।

(३) अज्जव आर्जव—वर्तावमें सरलता रखना दांभिकता परिहार करना।

(४) मुत्ति—मुक्ति-सर्व संगसे अपनी मुक्तता करलेना बिरक्त होन

(५) तव—तप—बारह प्रकारके तप कहे है उनकी पालन करना,

---

(१) दिगम्बरियोंमें भी स्त्रियोंको साध्वी (अर्जिका) होनेकी आज्ञा है

(२) हमने जिन २ स्थलोंपर दश धर्मोंका वर्णन देखा है, वहां मुक्तिकी जगह त्यागधर्म देखा है, परन्तु उक्त गाथासे इस विषयमें मतभेद जाना जाता है, कदाचित् श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ऐसा माना गया हो।

(६) संजम—संयम—इन्द्रियोंका दमन करना।

(७) सच्चं—सत्य—सदा सत्य भाषण करना।

(८) सोयं—शौच—शरीर और मन पवित्र रखना अमंगलीक विचारों तकको हृदयमें स्थान न देना।

(९) अकिंचण—अकिञ्चन—कोई भी पदार्थ ग्रहण नहीं करना। अपने निकट कुछ भी न रखना।

(१०) वम्भम्—ब्रह्मचर्य—अर्थात् ब्रह्मचर्य धर्मका पालन करना। इसके विषयमें इतनी कठिन आज्ञा है कि, जहांपर एकादि स्त्री बैठी हो वहां यतिको बिलकुल जानेतकका निषेध है।

यतिको क्या करना चाहिये और क्या नहीं.

यतिको भिक्षावृत्तिपर निर्वाह करना पांचों इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग करना, एकवार भोजन करना, क्षौर नहीं कराना। काष्ठ[1] पात्रमें भोजन करना, (२) भिक्षा मांगना तो केवल पांचही घर

---

(१) काष्टपात्रमें भोजन करना व काष्टपात्र पास रखना श्वेताम्बरी तथा ढुंढिया साधुओंकी रीति है। दिगम्बरी साधु जीवोंकी रक्षार्थ मयूरपुच्छकी पीछी और शौचार्थ जलके लिये कमण्डलु रखनेके सिवाय अन्य कोई भी परिग्रह नहीं रखते।

(२) घर २ जाकर भिक्षा लाना और फिर अन्यत्र खाना यह भी श्वेताम्बरी पद्धति है। दिगम्बरी साधु गृहस्थके घरपर जाकर पाणिपात्रमें भोजन करते हैं। यथा—

गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्राःपुटाहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १ ॥

अर्थ—पर्वतकी [illegible] अथवा गुफाओंमें [illegible] निवास करना और (दाताके घर जैसा मिले वैसा शुद्ध आहार लेकर) अपने हाथोंको जिन्होंने पात्र बनाया है और जो अन्न [illegible] ३६ ग्रासतक आहार लेते हैं ऐसे दिगम्बर मुनि उत्तम गतिको जाते हैं।

मागना (१) और वह भी गृहके निमित्त वनी होतो लेना सर्वदा ध्यान व स्वाध्यायमें मग्न रहना; एकाकी (अकेला) नहीं रहना। दश पांच जन मिलकर एक स्थानमें रहना। ग्रीष्मऋतुमें पर्वतोंके शिखरोंपर, शीतकालमें नदियोंके तटपर और पावसकालमें वृक्षोंके नीचे तपश्चर्या करना; इनमेंसे अनेक नियम वर्तमानमें कोई पालते नहीं है। अपने यहां सन्यासियोंका जो धर्म कहा है वहीहुब तेक जैनशास्त्रोंमें यतियोंको वतलाया है, परंतु इस शास्त्रोक्त धर्मके अनुसार चलनेवाले हजारों किंवा लाखोंमे एक ही दो पाये जाते हैं इन्दौरकी तरफ यती लोगोंके घर, द्वार,

---

(१) पांच घर भिक्षा मांगना और एक जगह सग्रह करके खाना ऐसा साधुयोंकेलिये नही समझना स्वेताम्बरीय साधुलोक (यति ढुंढ़िये ही) ऐसा करते है अथवा दिगम्बरीयोंमें उत्कृष्ट श्रावकके क्षुल्लक अहल्लुक दो भेद हैं उनमेंसे क्षुल्लक पक्तिबंध पांच घरसे भोजन लेकर पांचवे घर बैठकर खा सक्ते है और साधु तथा अहल्लुक (सर्वोत्तम श्रावक) भोजनके समय मौन साधकर वस्तीमे आते है गृहस्थलोग भोजन तैयार होनेके पश्चात् घरके दरवाजेपर बैठकर साधु अहल्लुक आदिको भोजन देनेके लिये घंटे दो घंटे द्वारापेक्षण करते है। दिगम्बरी साधुको देखते ही गृहस्थ नवधाभक्तिपूर्वक आहार। ग्रहण करनेकी प्रार्थना करता है। इस प्रकार अहल्लुक वा साधु पांच गृहस्थोंके दरवा- जेपर जांयगे। यदि किसीने नवधाभक्तिपूर्वक नही बुलाया तो फिर उस दिन आहार नही लेगे। वनमें जाकर ध्यान स्वाध्यायमें मग्न हो, जांयगे, क्योंकि पाच घरसे छट्टे घर जानेकी आज्ञा ही नहीं है। कोई २ साधु पहिले ही घरपर भिक्षा मिलैगी तो भोजन करेंगे इत्यादि अनेक प्रकारकी कठिन २ प्रतिज्ञायें करके भी वनसे भोजनार्थ निकलते है।

खेतीवाडी, व्यापार व्यवहार वगैरे सब कुछ है, अपने लोगोंमें व्याजबट्टा लेनेवाले, चोरी करनेवाले, अन्न विधवाओंको कुमार्गमें फंसानेवाले, व प्रसंग पडनेपर नर्मदूतके भी काम करनेवाले संन्यासी जैसे पाये जाते हैं वैसेही जैनी लोगोंके यति भी सैंकडों वक्त सर्वथा भ्रष्ट आचारणोंके और यति इस नामके विपरीत वर्ताव करनेवाले पाये जाते हैं। परंतु शास्त्रोंमें जो यतिधर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसमें कुछ भी शंका नहीं।

यतिधर्म ग्रहण करनेवाली स्त्रियोंका उपयोग.

यतिधर्म ग्रहण करनेवाली स्त्रियोंको भी ये ही नियम पालने चाहिये, शास्त्रोंमें एक बहुत महत्त्वका और लोकोपयोगी कार्य उनकेलिये दिया गया है। अर्थात उन्हें श्रावकोंके घर २ जाकर स्त्रियोंमें धर्मशिक्षणका प्रसार करना चाहिये। ऐसी शास्त्रोंकी आज्ञा है। अर्थात् ख्रिस्तीय मिशनसरीखी ही यह संस्था है; परंतु ख्रिस्तीय संस्थाकी अपेक्षा यह अपने लोगोंके बहुत उपयोगकी है। स्त्रीशिक्षणका प्रसार स्त्रियोंके ही हाथसे होना चाहिये; परंतु अपने समाजमें प्रत्येक स्त्रीका किसी नियमित वयके पूर्व विवाह करना आवश्यक होनेके कारण स्त्रीशिक्षणसरीखे देशो-पकारक कार्यको स्त्रियोंकी ओरसे कुछ भी सहायता नहीं मिलती। जैनियोंमें (श्वेताम्बर पंथमें) स्त्रियोंको यतिदीक्षा लेकर परोपकारी कार्योंमें जन्म व्यतीत करनेकी आज्ञा है। यह सर्वोत्कृष्ट है इसमें कुछ भी संशय नहीं है; और हिन्दूसमाजको इस विषयमें जैनि-योंका अनुकरण अवश्य करना चाहिये, ख्रिस्तीय मिशनरी स्त्रियां और बहुत अंशमें स्त्रीशिक्षाका प्रचार अवश्य करती है; परन्तु

उनका परदेशीपन और विशेषतः उनका ख्रिस्तीधर्म इस प्रथाको लोकप्रिय करनेके कार्यमें हमेशा बाधक है। इसकेलिये उपाय नहीं है।

जैनी आस्तिक है कि नास्तिक?

जैनी लोग आस्तिक वादी हैं कि, नास्तिकवादी! इस विषयमें बहुतही मत भेद हैं। श्रीशंकराचार्य्यने उन्हें नास्तिक कहा है, पाश्चिमात्य ग्रन्थकार भी उन्हें नास्तिक समझते हैं; परन्तु जैनियोंको नास्तिक कहनेमें थोड़ीसी भ्रान्ति होती है। ऐसा मुझे जान पडता है। जैनी लोग—आत्मा, कर्म और सृष्टिको नित्य मानते है, इनका न कोई उत्पन्न करनेवाला है और न नाश करनेवाला है ऐसी उन लोगोंकी समझ है। हम जो कर्म करते है उसका फल हमको मिलता है। ईश्वरका उससे अर्थतःभी कुछ सम्बन्ध नहीं है। हम स्तुति करके परमेश्वरको प्रसन्न कर लेवें व ईश्वर हमारी स्तुतिमें भूलकर हमारे कर्मानुसार भलाबुरा फल दिये बिना रह जावेगा, यह कल्पना भी जैनियोंमें नहीं है। ईश्वर सर्वज्ञ, नित्य और मङ्गलस्वरूप है यह जैनियोंकी मान्य है; परन्तु वह हमारी पूजा व स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमपर विशेष कृपा करैगा व न्यायके कांटेको अणुमात्र भी इधर उधर करैगा ऐसा नहीं है। कर्मानुसार ही फल मिलैगा। यह नियम सदा नित्य है। इसी नियमसे सम्पूर्ण सृष्टिका सूत्र चलता है। इसके बीचमें परमेश्वर कभी नहीं पड़ता। ऐसी जैनियोंकी श्रद्धा है। मनुष्यकीआत्मा रत्नत्रयके साधनसे उन्नतिकी ओर जाते २ निर्वाणतक पहुंचके ईश्वररूप हो जाती है; किंतु

ईश्वर सृष्टिका निर्म्माता, शास्ता किंवा संहारकर्त्ता न होकर अत्यन्त पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुआ आत्मा ही है। ऐसा जैनी मानते हैं अत एव वह ईश्वरका अस्तित्त्व नहीं मानते हैं ऐसा नहीं है किंतु, ईश्वरकी कृतिसम्बन्धी विषयमें उनकी व हमारी समझमें कुछ भेद है। इस कारण जैनी नास्तिक हैं। ऐसा निर्बल व्यर्थ अपवाद उन विचारोंपर लगाया गया है। कर्मानुरूप फल प्राप्तिके अनुसार यह संसार चल रहा है। ईश्वरपर इस सम्बन्धी कर्तव्यका भार कुछ भी नहीं आता है ऐसा जैनी लोग कहते हैं। अत यदि उन्हें नास्तिक कहोगे तो,—

'न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ।
'न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥
'नादत्ते कस्यचित्पापं न कस्य सुकृतं विभुः ॥
'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता)

ऐसा कहनेवाले श्रीकृष्णजीको भी नास्तिकोंमे गणना करना पडेगी। आस्तिक व नास्तिक यह शब्द ईश्वरके अस्तित्त्वसम्बन्धमे किंवा कर्तृत्वसम्बन्धमे न जोडकर पाणिनीय ऋषिके सूत्रानुसार (परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः,) और

---

१ अर्थ—परमेश्वर जगतका कर्तृत्व व कर्मको उत्पन्न नहीं करता। इसी प्रकार कर्मोंके फलकी योजना भी नहीं करता, स्वभावसे सब होता है। परमेश्वर किसीका पाप नहीं लेता और न पुण्य लेता है। अज्ञानसे ढका हुआ ज्ञान रहनेसे प्राणीमात्र मोहमें फस जाते हैं।

२ परलोक है, ऐसी जिसकी मति है वह आस्तिक है। परलोक नहीं है, ऐसी जिसकी मति है वह नास्तिक है।

(परलोको नास्तीति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः) श्रद्धा करें तो जैनियोंपर नास्तिकत्त्वका आरोप नहीं आ सक्ता; कारण जैनी परलोकका अस्तित्व माननेवाले हैं। स्वर्ग नर्क, व मृत्यु इन तीनोंको जैनी लोग मानते हैं। स्वर्ग बारह हैं किंवा सोलह। इस विषयमें दिगम्बर श्वेतांबर संप्रदायोंमें मतभेद है। परंतु परलोकके विषयमें किसी प्रकारकी शका नहीं है, कर्मानुबंधसे पृथक् २ लोकोंमें भ्रमण करके पुण्य कर्मका[1] पूर्णतया संचय हुआ कि जीव मोक्षपदको प्राप्त होता है ऐसा वह समझते हैं, तब पाणिनीयका अर्थग्रहण करके जैनियोंपर नास्विकत्व स्थापित करना नहीं बन सक्ता, ' जिन्हें श्रुति प्रमाण नहीं वे नास्तिक हैं, ऐसा अर्थ यदि ग्रहण करो तो बेशक जैन नास्तिक हैं। ऐसा स्वीकार करना चाहिये। कारण वे वेदोंको प्रमाण नहीं मानते. यह जगत्प्रसिद्ध बात है; परंतु ख्रिश्चियन, मुसल्मान, बौध व साम्प्रतमें उदय प्राप्त ब्राह्मसमाजादि पंथ तक वेदोंको प्रमाणिक न माननेसे वेभी नास्तिकोकी कोटिमें आवेंगे ! अत एव आस्तिक नास्तिक शब्दोंका कैसा भी अर्थ ग्रहण करके जैनियोंको नास्तिक सिद्ध करते नहीं बनता।

परन्तु एकदृष्टीसे मात्र जैन नास्तिक कहे जाते हैं और ब्राह्मणधर्मी ग्रन्थकार किंवा पाश्चिमात्य लेखक जब २ बौद्धों व जैनियोंको नास्तिक कहते है तब २ वे इसी दृष्टीसे देखते होंगे ऐसा जान पडता है,

दो नास्तिक धर्म

(१) 'पुण्य कर्मका। इसकी जगहँ समस्त "शुभाशुभ कर्मोंका नाश हुआ कि"–ऐसा कहना चाहिये क्योंकि जैनशास्त्रोंमें–कृत्स्नकर्मवियोगलक्षणो मोक्षः ऐसा मोक्षका लक्षण कहा है।

सरीखे पवित्र आचरण रखनेकी प्रेरणा हमको होवे एतदर्थ ऐसे महात्माओंकी अर्थात् तीर्थंकरोंकी मूर्ति स्थापन करनेकी चाल पड़ी है। सम्पूर्ण जैनमंदिरोंकी मूर्तियां ध्यानमग्न होती हैं, खड्गासन मूर्ति दोनों हाथ लम्बे छुटे हुए व नेत्र अर्धबन्द नासाग्रमें दृष्टी ठहराये होती है और पद्मासन मूर्ति बैठे आसनयुक्त पांवमें पांव उलझाये, दोंनो हांथोंके पंजे पांवोंके मध्यभागमे जोड़े रक्खे व नेत्र अर्धबन्द नासाग्रमें दृष्टि लगाये, ऐसी होंती हैं, जो मूर्तियां नग्न रहती हैं वे जैनियोंके दिगम्बरीय संप्रदायकी होता हैं, श्वेताम्बरीय पंथकी मूर्तियां कोपीन युक्त होती हैं, परन्तु यह कोपीन कपड़ेकी बनाकर पहिनायी हुई नहीं होती है, जिस धातु किंवा पाषाणकी मूर्ती हो, उसीकी अंगपर घड़ी (कोरी) हुई होती है। जैनीलोग इन मूर्तियोंका पूजन हमेशह सबेरे करते हैं, पूजन और भोजन ये दो बातें रात्रिको करना अत्यन्त वर्ज्य हैं। दिगम्बरीय जैन ऊनके कपड़े पहिनकर किसीको भी मन्दिरमें जाने नहीं देते। इसी प्रकार चँवर भी मन्दिरमें नहीं आने देते। मूर्तिका पूजन श्रावक अर्थात् गृहस्थाश्रमी करते है। मुनि नही करते। वे केवल दर्शन और नमस्कार मात्र करते है, श्रावकोंकी पूजनविधि प्रायः हम ही लोगोंसरीखी है अंतर केवल इतनाही है कि, दिगम्बरीय जैनी मूर्तिका जल धारासे स्नान नहीं कराते किन्तु गीले कपड़ेसे उसका प्रक्षालन करते है; व अक्षत,

---

(१) दीपधूपादि अष्ट द्रव्योंसे सबही दिगम्बरी पूजन करते है, जल धारासे स्नान भी कराते है। हां वर्तमानमें कोई २ शुद्ध मार्गी केवल प्रक्षाल करते है। परंतु शास्त्रोंकी यह अनुमति नहीं है, कदाचित् आपने ऐसा ही देखा होगा।

अनुवादक.

स्वर्ग मानते है, इनके गुरु अपने भक्तोंके हाथसे दिया हुआ
पने हाथमे रखवाकर भोजन करते हैं थालीमें नहीं जीमते ।

श्वेताम्बर जैन

दूसरा पंथ श्वेताम्बर—यह दिगम्बरीपंथके पश्चात् निर्माण किय हुआ जान पड़ता है । इस पंथकी उत्पत्ति विषयमें दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों जुदी कथा कहते है । उसमेंसे दिगम्बरपंथक कथा इसप्रकार है कि,—"उज्जयनीमे चन्द्रगुप्त नामका राजा राज करता था । वहां भद्रबाहुस्वामी नामक जैनमुनि फिरते २ भिक्षा आये, उनको एक गृहके पास पहुंचनेपर एक बालकने कहा कि, तु यहांपर मत रहो, शीघ्र चले जाव; कारण अब यहांपर भीष दुष्काल पड़नेवाला है । वह १२ वर्षतक रहैगा । फिर तुम्हे को भिक्षा नहीं देगा । भद्रबाहुने अष्टांग निमित्तज्ञानसे सत्य जा करके २४०० शिष्योंमेंसे आधे मुनियोंको वहां रक्खे औ अवशेष आधे मुनियोंको लेकर वह दक्षिणकी ओर च गये। यहांपर उस बालकके वचनानुसार यथार्थमे १२ वर्षका दुष्का पड़कर लोक चटापट मरने लगे । तब भद्रबाहुके १२०० शिष्यों को किसीने भिक्षा नहीं दी, तो उन्हें निरुपाय हो अपनी न

---

(१) भद्रबाहुके २४,०० मुनि शिष्य नही थे किंतु २४००० हजार थे उनको अपने ज्योतिष विचारसे १२ वर्षके अकाल पडनेका कहकर द क्षिणकी तरफ विहार कर जानेको आदेश दिया परन्तु सब मुनि उनवे साथ नहिं गये । आधे अर्थात् १२,००० हजार वही रह गये । सो ऐसे दु ष्कालमें मुनिधर्म पालनेमें असमर्थ होकर उन्होंने सरल स्वेताम्बरमत चलाया ।

स्थिति छोडकर इतर लोगोंके समान वस्त्र धारण कर रोटी पानीका उद्योग करना पडा. दुष्कालकी १२ सालें पूरी होनेपर भद्रबाहु वापिस आकर देखते हैं तो अपने शिष्योंको श्वेत वस्त्रग्रहण किये हुए पाया. तब इन्होंने अपना धर्म छोड दिया ऐसा समझकर वे अपने १२०० नग्न शिष्योंके सहित उनसे अलग रहने लगे. श्वेताम्बरियोंके मतसे भद्रबाहुकी मृत्युके पश्चात् ६०९ वर्षसे यह दोनों पंथ अलग हुए. अस्तु. दिगम्बर व श्वेताम्बर इन दोनोंके आचरणोंका भेद ऊपर जगहँ जगहँ दिखलायाही है. श्वेताम्बरियोंके मन्दिरोंमें हिन्दुओंके तो क्या मुसलमानोंके पीर शरीफतकको मूर्तिया रहती है. पूजन करनेको उनके यहां ब्राह्मणका चलन है; वे १२ स्वर्ग मानते है; उनके गुरु वस्त्रपरिधान करते थालीपात्रादिकोंमे भोजन करते है. वे स्त्रियोंको मोक्ष होना मानते है, यज्ञोपवीत नहिं डालते परन्तु पूजनके समय रंगा हुवा सूत व रेशम जनेऊ सरीखा गलेमें डालते है. उसे उत्तरासंग कहते हैं.

ढूंढिया जैन.

श्वेताम्बरोंमें ही ढूंढिया नामक एक शाखा है. इन लोगोंका उल्लेख ऊपर अनेक जगहँ आया है. इन्हींका मालवामे शेवडे नाम है परन्तु ये स्वतः अपनेको साधुमार्गी अथवा मठमार्गी (थानकपंथी) कहते है, कारण ये लोक प्रायः मठोंमें रहते है. यह पंथ बहुत विचित्र है. ये मूर्ति वगैरह नहीं मानते; अर्थात्

---

(१) भद्रबाहुके वापिस आनेका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता. किन्तु वे दक्षिणमे ही श्रवणबेलगुलके पर्वतपर परलोकको प्राप्त हुये ऐसा वहांके शिलालेखपरसे विदित होता है.

इन लोगोंको मन्दिरोकी आवश्यकता नहीं है. मनोविकारोका दमन करना यही बडा धर्म है. ऐसा वे समझते है, और इस धर्मका चिन्तवन यही उसकी मानसपूजा है, तीर्थंकरोंके पवित्र आचरणोंको अनुकरण करना ऐसा वह कहते हैं, परन्तु तीर्थ करोंको कुछ विशेष मान देनेकी प्रथा उनमे नहीं हैं. उनके गुरु शुभ्रवर्णके परन्तु कुछ मैलेवस्त्र पहिनते हैं, स्वासोच्छ्वास क्रियामें उष्णस्वाससे वायुकायके जीव न मरें इसलिये मुखपर कपडेकी एक पट्टी बाधते हैं, व रस्ता चलते पादप्रहारसे जीवजन्तुओकी प्राणहानि न होवे इसलिये झाडनेकेलिये हाथमें एक नर्मकूच लेकर फिरते हैं, इस कूचकों रजोहरण कहते हैं, इसीके 'कटासन' अथवा 'ओघा' ऐसे भी नाम हैं. ये लोग सारी जिन्दगीमें कभी स्नान नहीं करते; हजामत नहीं कराते; हाथसे केश उखाडते है. इनका निवास मठोमें रहता है; इन मठोको थानक कहते हैं. इस पंथमें शिक्षित लोगोंकी संख्या बहुत ही थोडी है. संस्कृत भाषाके जैनधर्मी ग्रन्थोंके समझने योग्य विद्वत्ता शायद एक दोहीके अंगमें होगी; जिन सूत्रोंका गुजरातीमें भाषान्तर हो चुका है उन्हींको घोक २ कर वे अपना निर्वाह करते हैं.

इनमे स्त्रियोको भी आजन्म ब्रह्मचर्यसे रहनेकी आज्ञा है, स्त्रिया भी श्वेत परंतु कुछ मैले कपडे पहिने व मुखपर पट्टी और हातमें कूच रखकर द्वार द्वार फिरती हुई नजर आती है.

जैन लोग मूलसे जातिभेदके न माननेवाले हैं (१) किसीभी धर्म व जातिके मनुष्यका जैनधर्ममे आना

जातिभेद

बन सक्ता है. तथापि आज दो अढाई हजार वर्षसे हिंदू लोगोंके साथ संसर्ग रहनेसे हमारा जातिभेद जैनियोने ग्रहण कर लिया है (२) जैनशास्त्रोंमें ' जातिभेदका पालन करो, यह नहीं कहा है, परंतु लोकरूढीसे वह पाला जाता है, ' शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी' यह वचन जितना आधुनिक हिन्दुओंको, उतना ही आधुनिक जैनियोंको भी लागू होता है.

---

(१) मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहितद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात्क्षत्रिया शस्त्रधारणात् ।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्यायाच्छूद्रान्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥ ४६ ॥

अर्थ—जाति नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मनुष्यजाति एक ही है. परंतु उपजीविकाके (आजीविकाके) भेदोंसे उसके ४ भेद हैं. व्रत देने व संस्कार करनेके काम करनेवाले ब्राह्मण शस्त्रधारण करनेवाले क्षत्रिय, न्यायमार्गसे द्रव्योपार्जन करनेवाले वैश्य, और तीनो वर्णोंकी सेवा करनेवाले शूद्र है इस प्रकार चार जाति महापुराणमें कही है

जातिगोत्रादिकर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः ।
येषु ते स्युस्त्रयो वर्णा शेषाः शूद्राः प्रकीर्त्तिताः॥

अर्थ—शुक्ल ध्यानका कारण उत्तम जातीही है. उत्तम गोत्र इत्यादि उत्तम कार्य जिसमें है एसी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन ही जाति हैं. शेषके वर्णको शूद्र कहते हे, क्योंकि उनमें उच्चगोत्रत्व उच्चजाति व शुद्धाचरण नहीं होते

(२) जैनियोने जातिभेद हिंदुवोंसे लिया हे ऐसा नहीं कहना चाहिये किन्तु जैनोंके यहां आदिसे जातिभेद माना गया है. (देखो जिनसेनाचार्यकृत महापुराण.)

जैनधर्मके विषयमें अभीतक जो कहा गया गया है उससे उसकी बौद्धधर्मसे बहुत कुछ समानता जान पडती है और इतनीही बातसे जैनधर्म बौद्धधर्मसे

बौद्धधर्मसे साम्य

निकला, अथवा पहिला दूसरेकी नकल है ऐसा तर्क कई एक पंडितोने निकाला है. परंतु वह भूलका है, गौतमबुद्धके पहिले तेवीस बुद्ध होगये व गौतम शाक्य मुनि यह चौवीसवां. इसी प्रकार वर्द्धमान व महावीर इनके भी पहिले तेवीस तीर्थंकर (जिन) होगये व महावीर चौवीसवें थे. बुद्ध व महावीर दोनों ही काश्यप गोत्री क्षत्रिय थे दोनो ही धर्मोंमें श्रुतिको वेदको प्रमाण नहीं मानते व ईश्वरको सृष्टिका कर्तृत्व व चालकत्व नहीं सौंपते; दोनोंहीमें जातिभेद नहीं. दोनोमें पुरुषोंके बराबर स्त्रियोंका मान है; बौद्धोंके सदृश जैनियोमें भी श्रावक और यति ऐसे दो वर्ग है. दोनोंमें अहिंसातत्त्व प्रधान है; बौद्धधर्ममें जैसे बुद्ध, धर्म और संघ इनका त्रिकूट है वैसे जैनियोंमें सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, व सम्यक्चरित्र यह रत्नत्रयी है. दोनों धर्मोंको राजाश्रय मिला और आश्चर्य यह है कि, वह मौरवंशके राजाओंसेही मिला. बौद्धधमका पुरस्कर्ता राजा अशोक वैसे ही जैनधर्मका पुरस्कर्ता संपदि अर्थात् अशोकका नाती, अशोकका आजा चन्द्रगुप्त यह जैनधर्मी था ऐसा भी कईएकोंका मत है स्वतः अशोक राजातक मूलमें जैनधर्मी होकर पश्चात् बौद्धधर्मी हुआ ऐसा भी मि. एडवर्ड थॉमस नामके विद्वान् पंडितका कहना है. बौद्धधर्मग्रन्थ पाली भाषामें है; वैसे जैनियोंके अर्धमागधीमें है, बौद्धोंने विहार व स्तूप

बनवाये व शिलालेख लिखे वैसे जैनियोंने भव्य मन्दिर बनवाये विशालमूर्तियें स्थापित कीं और शिलास्तंभ भी खडे किये.

बौद्ध और जैनधर्म इनमें यह साम्य जैसे अनेक बातोंमें स्पष्ट दिखता है, वैसे कुछ थोडीसी बातोंमें इन दोनोंमें भिन्नता भी दिखती है. बौद्ध शून्यवादी तो जैन स्याद्वादी है, बौद्ध नग्नत्वका निषेध करते, दिगम्बर जैन नग्नताको अंतःशुद्धताकी साक्ष समझते हैं दोनों धर्मोंमें प्रधान ऐसे अहिंसातत्वके विषयमें भी भिन्नता दिखती है, हमारे हाथसे जीवहिंसा न होन पावे इसकेलिये जैनी जितने डरते है इतने बौद्ध नहीं डरते. अधिक क्या हर्वार्थ साहिबने अपने Religion of India नामक पुस्तकमें दन्तकथाके आधारसे लिखा है. वह यदि ठीक हो तो स्वतः गौतमबुद्ध सूअरके मांसका यथेच्छ भोजन करनेसे अजीर्ण होकर मरा ! यह सुन कर बहुतोंको आश्चर्य होगा. इस दतकथापर भरोसा न करो तो भी प्रचलित जैन व बौद्ध धर्म इनकी तुलना करनेसे बौद्धधर्मी देशमें मांसाहार अधिकताके साथ जारी है. यह बात अस्वीकार करते नहीं बनेगी. आप स्वतः हिंसा न करके दूसरेके द्वारा मारेहुए बकरेका मांस खानेमें कुछ हर्ज नहीं है, ऐसे सुभीतेका अहिंसातत्व जो बौद्धोंने निकालाथा वह जैनियोंको सर्वथा स्वीकार नहीं निर्वाण और पापपुण्यके सम्बन्धमें बौद्धधर्म व जैनधर्ममें अन्तर है. बौद्ध आत्माको नित्य नहीं मानते, जैन मानते है. यह आत्मा मायाके भ्रममें पडकर जुदी २ पर्यायोंमें आता है और अन्तमें

दोनोंकी विभिन्नता.

कर्मबंधोंसे मुक्तता पाकर अर्थात् मायाका आवरण दूर कर निर्वाणमें पहूचता है ऐसी जैनियोंकी श्रद्धा है. निर्वाणआत्माका नाश नहीं किन्तु उसे कर्मबंधसे निर्मुक्तकर अक्षय सुखको प्राप्त करना है: बौद्ध शास्त्रोंमें निर्वाणकी व्याख्या इसप्रकार है.

"न चाभावोऽपि निर्वाण कुत एवास्य भावना
भावाभावविनिर्मुक्तः पदार्थो मोक्षमुच्यते ॥"

इस प्रकारकी है. सारांश बौद्धोकी दृष्टिसे निर्वाण अर्थात् शून्यता जैनियोंकी दृष्टिमें निर्वाण शून्यता नहीं. यह पहिले बतलाया ही है.

कौन असल व कौन नकल

जैनधर्म व बौद्धधर्ममें जो साम्य दिखता है उसपरसे जैन धर्म बौद्धधर्मका अनुकरण है व मूल प्रथमका हैअनुकरण पीछेसे हुआ है, ऐसी तर्क कई एक पंडितोंने किया है एकबार देखनेसे यह अनुमान ठीक जान पड़ता है. बौद्धधर्मके सम्बन्धमें अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए है, इस धर्मका परिचय सबको होगया है और तदतिरिक्त पाश्चात्य ग्रन्थकारोंने बौद्धधर्मके इतिहास लिखे है परंतु; जैनधर्मके विषयमे अभीतक वैसा कुछ भी नहीं हुआ है. बौद्धधर्म चीन, तिब्बत जापानादि देशोंमें प्रचलित होनेसे और विशेषकर उसे उन देशोंमें राजाश्रय मिलनेसे उस धर्मके ग्रन्थोंका प्रचार अति शीघ्र हुआ, परन्तु जैनधर्म साम्प्रत हिन्दुस्थानके बाहर अधिकसा नहीं, और हिंदुस्थानमें भी जिन लोगोमें वह है वे व्यापार व्यवहारमें व्याप्ृत होनेसे धर्म ग्रन्थ प्रकाशन सरीखे कृत्यकी तरफ लक्ष देनेकेलिये अवकाशही नहीं पाते. इस कारण अगणित जैनग्रन्थ

अप्रकाशित पडे हुए हैं; युरोपियन ग्रन्थकारोंका लक्ष भी अद्यापि इस धर्मकी ओर इतना खिंचा हुआ नही दिखता यह भी इस धर्मविषयमें हम लोगोंके अज्ञानका एक कारण है. हमारे पडोसके विषयका परिचय भी हजारों कोसोंके यूरोपियन ग्रन्थकार लिख देवेंगे तब हमें पढनेको मिलैगा स्वतः परिचय पानेकी सुधि ही नहीं है। इससे जैनियोंकी समाज जैसी जोरशोरसे उन्नतिमें आना चाहिये वैसी अभीतक नहीं आई. अतएव बौद्धधर्म प्राचीन है अथवा जैनधर्म ? इस प्रश्नके सम्बन्धमें जैसा इकतरफी लोग कहै वैसा ही कानसे सुनकर मान लेनेके सिवाय अन्यमार्ग नहीं था. परन्तु आनन्दका विषय है कि, आकजल जैनी लोगोंमें इतिहाससम्बधी जागृति होने लगी है. पिछले जैन परिषद्के अधिवेशनमें जैनग्रन्थोंका जीर्णोद्धार करनेकेलिये एक बडे फंडकी स्थापनाका प्रस्ताव हुआ है प्राचीन मंदिर, मूर्ति, शिलालेख व ग्रन्थोंका मार्मिक परीक्षण व ब्राह्मणधर्म तथा बौद्धधर्मके ग्रन्थोंसे जैन ग्रन्थोंकी तुलना कर देखनेकी सुशिक्षित जैनियोंमें अधिकाधिक चाह दिखने लगी है, उनके प्रयत्नसे जैनधर्मका कालनिर्णय सम्बन्धमें दूसरी ओरके प्रमाण भी आने लगे है. उनपरसे विचारनेमें बौद्धधर्मसे किंवा उसके पीछे जैनधर्म निकला है ऐसा नही दिखता; किन्तु उलटा जैनधर्म प्रथमकाळ पीछेसे बौद्धधर्म निकला होगा ऐसा जान पडता है. इस सम्बन्धमें हमारे जैनी लेखकोने निम्नलिखित प्रमाणोंका शोध किया है.

जैनधर्ममें अनास्था.

जैनधर्मकी तरफके प्रमाण.

(१) जैनियोंके चौविसवें तीर्थंकर महावीर, गौतमबुद्धके सम-कालीन थे. प्रोफेसर विद्याभूपण कहते है कि, वे बुद्धसे अपेक्षा **वयस्क** भी थे. मिसेस ऐनी बिझेंट कहती है कि महावीरने ही बुद्धको **गुरूपदेश** दिया.

(२) महावीरके शिष्यका नाम गौतमस्वामी व इन्द्रभूति था वही ज्ञानमार्गमें एक २ सिढी चढा, तब उसे लोग बुद्ध कहने लगे. और इस विषयमें इराणी ग्रन्थका आधार है ऐसा डाक्टर हौग कहते है. (Fravardin Yasht-quoted. by Dr. Hoaun the Essay on the Sacred Language of the Parsees Bombay. 1862 P. 188

(३) अन्य कितनेकोंका मत है कि, गौतम बुद्ध महावीरका शिष्य नहीं, पिहिताश्रवका था. व पिहिताश्रव यह महाबीरके गणधरोंमें मुख्य था.

(४) ललितविस्तर नामक ग्रन्थकी प्रति जो तिब्बतमे उपलब्ध हुई है उसमें गौतमबुद्धका वर्णन करते हुए कहा है कि, बुद्धके वक्षस्थलमें श्रीवत्स, स्वास्तिक, नंद्यावर्त और वर्धमान ऐसे चार चिह्न थे. इनमेसे पहिले तीन अर्थात् श्रीवत्स, स्वस्तिक और नंद्यावर्त यह अनुक्रमसे १० वें, ७ वें और ११ वें जैन तीर्थकरोंके विशिष्ट चिंन्ह थे; और अन्तिम वर्धमान यह तो २४ वें तीर्थंकरका नाम था.

(५) कल्पसूत्र, आचाराङ्गसूत्रादि जैनग्रन्थोमें महावीरको ज्ञातृपुत्र अथवा नातपुत्त कहा हुआ पाया जाता है, ज्ञातृका अपभ्रंश नाडीका अथवा नाटिका बौद्धग्रन्थोंमें मिलता है, जैनियोका दूसरा प्राचीन नाम निर्ग्रन्थ है. जैनियोंको बौद्धग्रन्थोंमें निग्गंथनत्तपुत्त अर्थात् ज्ञातृका पुत्रका शिष्य निर्ग्रन्थ कहा है, उसी प्रकार नत्तपुत्तका अर्थात् महावीरकी दन्तकथा जैनधर्मकी कई दन्तकथायें डाली है, कई ठिकाणोंपर श्रावककोका उल्लेख है. महावग और महापुरि निव्वाणसुत्त इन दो बौद्धग्रन्थोंमें जैनधर्मका उल्लेख है. पार्श्वनाथ अथवा पारसनाथका चातुर्यामधर्म भी कहा है. इसपरसे यह सम्पूर्ण उल्लेख जैनविषयकही होना चाहिये इसमें कोई-सन्देह नहीं होता.

(६) ब्राह्मण ग्रन्थकारोंने जैन व बौद्ध इन दोनों धर्मोंका अपने ग्रन्थोमें उल्लेख किया है; परंतु एक दूसरेसे निकला ऐसा कहीं भी नही कहा, शंकरदिग्विजयमें शंकराचार्येने बौद्धोंसे बाराणसी क्षेत्रमें और उज्जयनीमें जैनियोंसे विवाद किया था ऐसा कहा है, जैन व बौद्धधर्म एक सरीखे होते तो दो बार जुदे २ स्थलोंमें प्रसंगी विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं थी. मध्वस्वामीने ‘ सर्वदर्शन संग्रह’ में उस समय प्रचलित दक्षिण प्रान्तके दर्शनोंका विवेचन किया है, उसमें जिसप्रकार बौद्धदर्शन दिया है.

उसी प्रकार जैनदर्शन भी लिखा है, ' अद्वैतब्रह्मसिद्धि, नामक ग्रन्थमें बौद्धोके चार पंथ बतलाये गये है. उसमें जैन यह उनमेंका एक था. ऐसा बिलकुलभी नहीं कहा. वाराहमिहिरने **शाक्यान् सर्वहितस्य शान्त मनसो नग्नान् जिनानां विदुः** अर्थात् बौद्ध लोग शान्त चित्त और सबका कल्याण करनेवाली मूर्तिको भजते है और जैन नग्नमूर्तिको ऐसा कहा है; और वराहमिहिरको जैनधर्मके विषयमें परिचय होना ही चाहिये. कारण उसके साक्षात् भाई भद्रबाहु यह जैन थे और ये दोनों एक ही राजाके दरबारमें थे, दोनोंही विद्वान् ज्योतिषी थे. ऐसी दंत कथा कहते है कि, उस राजाके पुत्र हुआ तब राजाने बराहमिहिरकृत उसकी जन्म पत्रिका देखी तो उसकी दीर्घ आयुष्यादि बराहमिहिरके वचनोसे मान्यकर राजाने बडा भारी पुत्रोत्सव किया व दरबार भरवाया, उस समय सब सरदार, प्रतिष्ठित, विद्वान व आश्रित एकत्र हुये थे. भद्रबाहु मात्र नहीं आये. यह देख राजाने भद्रबाहुको उस दिन दरबारमें न आनेका कारण पूछा तो उन्होंने स्पष्ट रीतिसे कहा कि, आज जन्मोत्सवके दरबारमें आना है व दशदिन पीछे दुःखका समाधान करानेको आना पड़ेगा ! दोनों समयके बदले एकदिन ही आपके यहां आनेका मेरा बिचार था. यह भाषण सुनकर राजाको क्रोध आया और उसने भद्रबाहुको कैदमें डाल दिया.

परंतु पीछे १० ही दिनमें भद्रबाहुका कहा हुआ अनुभवगोचर हुआ और बराहमिहिरका भविष्य अशुद्ध ठहरा. उस समय राजाने भद्रबाहुको कैदसे मुक्तकर अपने सन्निकट स्थान दिया और बराहमिहिरको निकाल दिया. ऐसी दंतकथा है. सारांश 'जैनी कौन है,' यह बराहमिहिर अच्छीतरह जानतेथे. व्यासजीने शारीरिक मीमासा के दूसरे अध्यायमें बौद्धमत व जैनमतका अलग २ खंडन किया है.

(७) पद्मपुराणमे जैनधर्मके पुरातनत्वको पुष्टीकरण करनेवाली एक कथा ऐसी है:—एकबार सुर और असुरोंमें युद्ध चल रहा था. असुरोंकी जीत होने लगी यह देखकर असुरोंके गुरु शुक्राचार्यकी तपस्या भ्रष्ट करनेके लिये इन्द्रने उसके पास एक अप्सरा भेजी. उसे देख शुक्राचार्य मोहित हुए. यह अवसर पाकर सुरगुरु बृहस्पतिने उसकी मति और भी अधिक भ्रष्ट करनेकेलिये जैनधर्मका उपदेश किया. ऐसी पौराणिक कथा यद्यपि प्रामाणिक नहीं मानी जासक्ती; तो भी इसपरसे जैनधर्मके विषयमें लोगोंका सामान्यतः मत किस प्रकारका था वह स्पष्ट जानने योग्य है.

जैनधर्म पहिले. बौद्धधर्म पीछे.

जैनधर्मके प्राचीनत्वके सम्बन्धमें जैनग्रन्थकार और भी कई प्रमाण सन्मुख करते है; परन्तु यदि उन सबका सांगोपांग विचार करें तो एक सम्बन्धमें व्याख्यान पूर्ण न हो सकेगा;

इसलिये जैनियोंके प्रमाणोंका यहापर किंचित् नामानिर्देश किया है, परन्तु इतनेपरसे ही जैनधर्म यह बौद्धके पश्चात् प्रस्तुत हुआ होगा ऐसा निश्चित नहीं होता. कोलब्रुकसाहिब सरीखे पंडितोंने भी जैनधर्मका प्राचीनत्व स्वीकार किया है. इतनाही नहीं, किन्तु उलटा बौद्धधर्म जैनधर्मसे निकला हुआ होना चाहिये, ऐसा विधान किया है. मिष्टर एडवर्ड थॉमस् इस विद्वान्का भी ऐसाही मत है. अभी निर्दिष्ट किये हुए पंडितनें Jainism or the early faith of Asoka नामक ग्रन्थमें इस विषयके जो कितने एक प्रमाण दिये है वे सब यदि यहांपर दिये जावें तो वहुत विस्तार हो जावेगा अतः उनमेंसे एक दो नमूने यहांपर देता हूं. उसमें कहा है कि, अशोकके प्रपिता चन्द्रगुप्तके समयमेजब बौद्धधर्म कुछ ऊपर सिर निकालने लगा था, तब जैनधर्मके क्षयके चिन्ह दिखने लगे थे. चन्द्रगुप्त स्वतः जैन था. इस बातको वंशावलीका दृढ आधार है.

चन्द्रगुप्तके स्वप्न.

इसके सिवाय चन्द्रगुप्तको १६ स्वप्न हुए थे व उन स्वप्नोंका अर्थ भद्रबाहुने जो किया उसपरसे यह बात स्पष्ट विदित होती है. बुद्धिविलास नामक ग्रन्थमें इन स्वप्नोंका अर्थ दिया है. उसमें कहा है कि,—

(१) यह राजा सर्वज्ञान नष्ट होगा. (२) जैनधर्मका क्षय प्रारंभ होगा और इसराजाका वंशही भ्रष्ट हो जावेगा. (३) जैनियोंमें नाना पंथ निकलेंगे. (४) आर्य खंडसे जैनज्ञान लुप्त प्राय होवेगा. इ० इ०

इसमें चन्द्रगुप्तका जैनधर्म व अशोकका बौद्धधर्ममें जाना ये दोनों बातें ध्वनित की है. चन्द्रगुप्तराजा श्रमण अर्थात् जैन गुरुसे उपदेश लेता था ऐसी मेगस्थनीस (ग्रीक इतिहासकार) की साक्षी है. अबुलफजल नामक फारसी ग्रन्थकारने 'अशोकने काश्मीरमे जैनधर्मका प्रचार किया' ऐसा कहा है. और राजतरङ्गिणी नामक काश्मीरके संस्कृत इतिहासका भी इस विधानको आधार है. उक्त बातें मि० एडवर्ड थॉमस् साहिबने अपने ग्रन्थमें दी है. परन्तु ये कहांतक ठीक है सो नहीं जान पडता. निदान राजतरंगिणीका अन्तिम आधार जो साहिबबहादुरने दिया है, उसपरसे भी उनका अभिप्राय सिद्ध नहीं होता यह मैं कह सक्ता हूं राजतरङ्गिणीमे अशोकने 'जिनशासनका प्रचार किया' ऐसा कहा है. इस वाक्यके उक्त जिन शब्दपर साहिब बहादुरकी सारी दार मदार दीखती है. परन्तु जिस जगह यह मदार यह उल्लेख है, उसके पीछेके दशबीस श्लोक पढो तो, वहां चैत्य, विहार आदि केवल बौद्धधर्म सूचक शब्द मिलते है. जिनसे कल्हणका उद्देश 'जिनशासन' शब्दसे 'बौद्धधर्म सूचित करनेका था ऐसा जान पडता है. बुद्धको भी 'जिन' ऐसी संज्ञा अमर सिंहसरीख जैनकोशकारकी दी हुई है. इसके अतिरिक्त राजतरंगिणीलिखित अशोक और प्रसिद्ध बौद्धधर्मी चक्रवर्ती राजा अशोक एकही था. ऐसा कहनेको भी आधार नहीं हं.

प्रोफेसर विद्याभूषण कामत.

कलकत्ताके प्रेसीडेन्सी कॉलेजके मुख्य संस्कृताध्यापक और पाली भाषाके पंडित प्रौ० सतीशचन्द्र विद्याभूषणका मत इस प्रश्नके सम्बन्धमें पूछा गया था. वे अपने ता० २४ नोवेंबर १९०३

के पत्रमें लिखते हैं कि, अशोक बौद्धधर्म स्वीकार करनेके पूर्व जैनधर्मी था; ऐसा स्पष्टतासे यद्यपि कहीं कहा नहीं हैं तौभी महावंशनामक बौद्धग्रन्थमें उसकी माता व स्त्रीका जैनियोंसे सम्बन्ध लगता था ऐसा कहा है. अशोक बौद्धधर्म स्वीकार करनेके पहिले अर्थात् अपने बाप बिन्दुसारकी मौजूदगीमें अवंति नगरीका व्हाइसराय व प्रतिनिधि था यह प्रसिद्धही है अशोककी माता एक श्रेष्ठी (सेठ) की पुत्री थी, और अशोककी स्त्री व सीलौनमे बौद्धधर्मका प्रचार करनेको गये हुए महिन्दकी माता अवन्तिके एक श्रेष्ठीकी पुत्री थी. उस समयके श्रेष्ठी अथवा व्यापारी बहुधा जैन थे. इसपरसे अशोकभी जैनधर्मी होगा ऐसा कहनेमें हानि नहीं है.

उपसंहार.

अभीतक जैनियोंसम्बन्धी पाश्चिमात्योंकी व हमारी विचित्र श्रद्धा उन लोगोंका इतिहास, जैनधर्मके मुख्य २ तत्व, सम्प्रदाय, नीति व आचार, जैनतत्वज्ञान, बौद्धधर्मसे समता व भिन्नता, और जैनधर्मपुरातनत्वविषयक प्रमाण आदि बातोंसम्बन्धी जो विवेचन किया उससे इस धर्ममें सुज्ञोंको आदरणीय जॅचने योग्य अनेक बातें हैं ऐसा दीख पडेगा. सामान्य लोगोकोभी जैनियोंसे अधिक शिक्षा लेना योग्य है. जैनी लोगोंका भाविकपन श्रद्धा व औदार्य प्रशंसनीय है. उनमें धर्मशिक्षणकी शालायें खोलनेका प्रयत्न चल रहा है, और इस काममें वे लोग केवल मुँहसे बडबड करनेवाले नही है. धर्मके लिये जितना चाहिये उतना द्रव्य खर्च करनेको वे तयार है, उनकी श्रद्धा दृढ है. अतः उन्हें व्यवहारमें लाभ अधिक होता है इसमें

कोई नई बात नहीं है. अहिंसातत्व उन्होंने उपहास्सास्पद होने योग्य लम्बी मर्यादातक पहुंचा दिया हैं, यह बुरा है, तथापि उससे उनमें आस्था कितनी है सो स्पष्ट जानी जाती है, उनकी आस्था श्रद्धा, औदार्य और धर्मजागृतिको किंचित् नया झुकाव मिलना इष्ट है. संसारमें सुधारणाका जो जगी जलप्रवाह चल रहा है, उसकी दिशाको जानेमें बडीभारी हानि है, और उसकी अनुकूल दिशामें जाना हितकर होगा, यह तत्व ध्यानमे रखकर हमारे जैनबंधु समाज व धर्मविषयोंको अपनी बुद्धिसे समय २ उन्नति देते जावेंगे तो गतिका मार्ग आजकलके सदृश कुंठित न रहेगा. जैनपरिषदके परिचालकोंने यह तत्व ध्यानमें रखके समाजभरके लोगोंको स्वकर्तव्यसम्बन्धमें जागृति उत्पन्न करनेका प्रारंभ किया है. जैनियोकी एक समय हिंदुस्थानमें बहुत उन्नतावस्था थी. धर्म, नीति, राजकार्यधुरधरता, वाङ्मय, समाजान्नोति आदि वातोंमें उनका समाज इतरजनोंसे बहुत आगे था. प्रत्येक वातोंमें ब्राह्मण व वौद्धोंकी बराबरीके महत्पद उन्होंने प्राप्त किये थे. संसारमें क्या हो रहा है इस ओर हमारे जैनबधु लक्ष देकर चलेंगे तो वह महत्पद पुनः प्राप्तकर लेनेमें उन्हें अधिक श्रम नहीं पडेगा. इसी सद्धेतुसे प्रेरित होकर जैन व अमेरिकन लोगोंसे संघट्टन कर आनेके लिये वम्बईके प्रसिद्ध जैनगृहस्थ परलोकवासी मि० वीरचन्द गांधी अमेरिकाको गये थे व वहा उन्होंने जैनधर्मविषयक परिचय करानेका क्रम भी स्थित किया था. अमेरिकामें ' गाधी फिलॉसाफिकल सोसायटी '

---

१ ये ठीक नहीं है. देखो पृष्ठ ४४ की.

अर्थात् जैनतत्वज्ञानका अध्ययन व प्रसार करनेके लिये जो समाज स्थापित हुई वह उन्हींके परिश्रमका फल है. दुर्दैवसे मि० वीरचन्दकी अकाल मृत्यु होनेसे उक्त आरंभ किया हुआ देशकार्य अपूर्ण रह गया है. परंतु उसे पूर्ण करनेको कोई सुशिक्षित जैन तयार होवे तो उसकी कीर्ति चिरायु हो; इसमें सन्देह नहीं है. हिंदुस्थानके लोगोको अपनी एकदेशीयता छोडकर अपनी दृष्टिका प्रदेश अधिक विस्तृत करना चाहिये; तवही उनका कल्याण होगा. यह जैनियोंके इतिहाससे सीखने योग्य है. दूसरे विषयकी पूर्ण खोजकर स्वतः उससे तुलना कर, अपनेमें जो कुछ न्यूनता हो वह दूसरेके सहाय्यसे पूर्ण कर लेना चाहिये. जबकी 'अपना व पराया बलाबलज्ञान' इस वीसवी शताब्दिका धर्मशास्त्रादिख रहा है, ऐसे समयमें जैन, बौद्ध, खिस्तीय, मुसलमान, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, आदि सर्व धर्मपंथोंका पारस्परिक परिचय करना कराना व एक दूसरेका अज्ञान तम दूर करना, और नवीन तयार होकर देखनेवाले सामान्य धर्मको (Universal Religion) यथाशक्ति सहायकर मनुष्य जातिके कल्याण करनेके श्रेयका अंशभाक् हो ऐसी प्रार्थना कर मैं इस लेखको पूर्ण करनेकी आज्ञा चाहता हूं.

अनुवादक—**नाथूराम प्रेमी.**

जैन मित्र—

(४)

जगद्विख्यात

पंडित बालगंगाधर तिलकका व्याख्यान और सहयोगी केशरीकी सम्मति.

श्वेताम्बर जैन कान्फरेसके गत तीसरे अधिवेशनमें ता० ३० नवम्बरको भारत गौरवके तिलक माननीय पंडित बालगंगाधर तिलकने मरहठीमें एक उत्तम ऐतिहासिक व्याख्यान दिया था, हमने उसका हिन्दी अनुवाद किया है. उसे एकवार पढ़नेके लिये अपने पाठकोंसे आग्रह करते हैं।

पं० तिलककी विद्वत्ता ऐतिहासिक विषयोंमें जगन्मान्य हो रही है. देशहितैषिताके कारण भारतीय प्रजा उनको असाधारण आदरकी दृष्टिसे देखती है. सुतरां ऐसे पुरुषशिरोमणिका व्याख्यान जैसा विशद निरपेक्ष और भावपूर्ण होना चाहिये, हुआ है. वे समस्त आर्यप्रजाको एकदृष्टिसे देखनेवाले तथा सबकी वृद्धिके परम आकाक्षी विशाल हृदय है. वे एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक है. परन्तु उन पत्रसम्पादकोंके समान संकीर्ण हृदयके नहीं, जो दूसरे धर्मकी वृद्धिके समाचार देना तो दूर रहो, दूसरेको देते हुए देखकर भी उसपर टूट पडते है।

जैनकान्फरेंसके विषयमें स्वसम्पादित केशरी पत्रकी १२ दिसम्बरकी संख्यामें उन्होंने जो सम्मातियां दी हैं, वे भी प्रत्येक जैनीके पढनेके योग्य है. अतः व्याख्यानके पश्चात् उसका अनुवाद भी दिया गया है।

* जैनधर्मकी प्राचीनता.

जैनधर्म प्राचीन होनेका दावा करता है. मै यद्यपि जैन नहीं हूं, परन्तु मैने जैनधर्मके इतिहास तथा प्राचीन ग्रन्थोंका अवलोकन किया है, और जैनधर्मी मित्रोंके संसर्गसे बहुत कुछ परिचय भी पाया है; इसलिये इन दो आधारोंसे आज जैनधर्मके विषयमे कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं. व्याख्यान किस भाषामें दिया जावे, यह विषम प्रश्न है, परन्तु मैं अंग्रेजीकी अपेक्षा मराठीमें देना अच्छा समझता हूं; क्योंकि मराठी भाषा श्रोताओंका अधिक भाग समझ सकेगा, ऐसा जान पड़ता है. मै जैनधर्मके विरुद्ध बोलनेके लिये खड़ा नहीं हुआ हूं, परन्तु उसके अनुकूल थोड़ेसे शब्द कहना चाहता हूं. जैनधर्म विशेषकर ब्राह्मणधर्मके साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखता है. दोनों धर्म प्राचीन और परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले हैं. जैन हिन्दूही हैं, हिन्दुओंसे बाहिर नहीं हैं. वे हिन्दुओंसे पृथक् नहीं गिने जा सक्ते. अनेक महाशय जैनियोंको हिन्दु धर्मसे पृथक् करते हैं, और हिन्दुधर्मसे जैनधर्मको निराला समझते हैं, परन्तु यथार्थमें यदि देखा जावे तो वह हिन्दुधर्म ही है. जैनसमुदाय हिन्दुकौममेंही है. जिस हिन्दुधर्ममें अन्य अनेक धर्मोंकी गणना होती है, उसी हिन्दुधर्ममें जैनधर्मकी भी गणना है. कितनेकोंने भेद बतलाया है, परन्तु वह भेद यथार्थ नहीं है जैन और ब्राह्मणधर्म हिन्दुधर्म ही है. ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानोंसे जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है, यह विषय निर्विवाद तथा मतभेदरहित है.

---

*यह व्याख्यान गुजराथी ‘ जैन ’ से अनुवादित किया गया है

सुतरां इसविषयमें इतिहासके दृढ़ सुबूत है. और निदान ख्रिस्ती सन्से ५२६ वर्ष पहिलेका तो जैनधर्म सिद्ध है ही. हिन्दुधर्मके परिचयी जानते हैं कि, शकवालोंके शक चल रहे है. मुसलमानोंका शक, ख्रिस्तीयोंका शक, विक्रम शक, शालिवाहन शक, इसीप्रकार जैनधर्ममें महावीर स्वामीका शक चलता है, जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके हैं. शक चलानेकी कल्पना जैनीभाइयोंने ही उठाई थी. वीरशकके पहिले युधिष्टिरका शक चलता था, ऐसा कहा जाता है, परन्तु उस कल्पनाका वर्तमान समयसे कुछ सम्बन्ध नहीं है. यद्यपि जैनधर्म प्राचीनतामें पहिले नंबर नहीं है, तथापि प्रचलित धर्मोंमें जो प्राचीन धर्म है, उनमें यह प्राचीन है. जैनधर्मकी प्रभावना महावीर स्वामीके समयमें हुई थी. महावीर स्वामी जैनधर्मको पुनः प्रकाशमें लाये इस बातको आज २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके. उसीसमयसे जैनधर्म अस्खलित रीतिसे चल रहा है. इसीप्रकार ब्राह्मणधर्म अथवा हिन्दुधर्म प्राचीन है. वर्तमानमें जो हिन्दू हैं, वे एक समय चारवर्णोंमें विभक्त थे. उनमेंके ही जैनी है, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण थे. इन्हीं चार वर्णोंमेंसे जैनियोंका समुदाय उत्पन्न हुआ है, इस कारणसे दोनों धर्मकी समानता आजतक व्यक्त हो रही है. इन दोनों धर्मोंकी एकता प्रगट रीतिपर जानी जा सक्ती है और पृथक्ताकी भ्रांतिका निवारण अभ्याससे हो सक्ता है, क्योंकि अब इस भ्रांतिके टिकने योग्य स्थान नहीं है. गौतमबुद्ध महावीरस्वामीका शिष्य था, ऐसा पुस्तकोंसे विदित होता है, जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्मकी स्थापनाके प्रथम जैनधर्मका प्रकाश फैल रहा था. यह बात विश्वास करनेके योग्य है. गौतम और बौद्धके इतिहासमें २० वर्षका

अन्तर है. चौवीस तीर्थंकरोंमें महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे. इससेभी जैनधर्मकी प्राचीनता जानी जाती है. बौद्ध धर्म पीछेसे हुआ यह बात निश्चित है. बौद्धधर्मके तत्त्व जैनधर्मके तत्त्वोंके अनुकरण हैं।

ब्राह्मणधर्मपर जैनधर्मकी छाप.

महाशयो ! यहांपर मुझे एक आवश्यक बात प्रगट करना है, वह यह है, कि अनुमान ५००-६०० वर्ष पहिले जैनधर्म और ब्राह्मणधर्म इन दोनों धर्मोंका तत्त्व सम्बन्धी झगड़ा मच रहा था. मतभेद तथा विचारान्तरोंके कारण जैसे मौके निरन्तर आया करते है, वैसा वह भी एक मौका था, एक जीतता है और दूसरा हारता है इसमें मतभेद होता. है, परन्तु विशेष अन्तर गिनने योग्य नहीं होता. श्रीमान् महाराज गायकवाड़ने पहिले दिन कान्फरेसमें जिस प्रकार कहा था, उसी प्रकार "आहिंसा परमो धर्मः" इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मणधर्मपर चिरस्मरणीय छाप (मुहर) मारी है. यज्ञयागादिकोंमें पशुओंका बध होकर जो 'यज्ञार्थ पशुहिंसा' आजकल नहीं होती है, जैनधर्मने यही एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मणधर्मपर मारी है. पूर्वकालमें यज्ञके लिये असंख्य पशुहिंसा होती थी. इसके प्रमाण मेघदूतकाव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थोंसे मिलते है. रतिदेव नामक राजाने जो यज्ञ किया था, उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था, कि नदीका जल खूनसे रक्तवर्ण हो गया था ! उसी समयसे उस नदीका नाम चर्मवती प्रसिद्ध है. पशुवधसे स्वर्ग मिलता है, इस विषयमें उक्त कथा साक्षी है ! परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मणधर्मसे बिदाई ले जानेका श्रेय (पुण्य) जैनधर्मके हिस्सेमें है ।

झगड़ेकी जड़ हिंसा.

ब्राह्मणधर्म और जैनधर्म दोनोंके झगड़ेकी जड़ हिंसा थी. वह अब नष्ट हो गई है, और इस रीतिसे ब्राह्मणधर्मको अथवा हिन्दुधर्मको जैनधर्मने अहिंसाधर्म बनाया है. हिंसा किसी जीवके मारने अथवा किसीके जीव लेनेको कहते है. ससारके लगभग सम्पूर्ण धर्मोंमें हिंसाका निषेध किया है. बौद्धधर्ममें निषेध है, परन्तु चीनादि देशवासी बौद्धोंमें हिंसाका पारावार नहीं है. हिन्दुस्थानसे बौद्धके विनाश होनेका यही एक कारण है बाइबिलमें कहा है कि do not kill हिंसा मत करो. परन्तु इसका अर्थ ख्रिस्ती लोग इतना ही करते हैं कि 'खून मत करो' इस रीतिसे बाइबिलकी आज्ञाका निराला ही अर्थ किया जाता है. सहस्रावधि मनुष्योंका युद्धमें संहार होता है, परन्तु उसमें राजाकी आज्ञा कारणभूत बतलाई जाती है. यथार्थमें अहिंसाका वहुत थोड़ा अर्थ किया जाता है. सो हिंन्दमें जो लक्षावधि पशुओंका वध होता है, उसके पापका बोझा ख्रिस्तीधर्मके अर्थ समझानेवालोंके सिरपर है. परन्तु ब्राह्मणधर्मपर जो जैनधर्मने अक्षुण्ण छाप मारी है, उसका यश जैनधर्मके ही योग्य है. अहिंसाका सिद्धान्त जैनधर्ममें प्रारंभसे है, और इस तत्त्वको समझनेकी त्रुटिके कारण बौद्धधर्म अपने अनुयायी चीनियोके रूपमें सर्वभक्षी हो गया है।

ब्राह्मण और हिन्दुधर्ममें मास भक्षण और मदिरा पान बंद हो गए, यह भी जैनधर्मका प्रताप है. अहिंसाकी और दयाकी विशेष प्रीतिसे कई एक लोगोंके हृदय हिंसाके दुष्कृत्योंसे दुखने लगे और उन्होंने आवेशवश स्पष्ट कह दिया, कि जिस वेदमें हिंसा है, हमको

वह वेद मान्य नहीं. जो देव हिंसासे प्रसन्न होता हो, उस देवकी हमको आवश्यकता नहीं, और जिन ग्रन्थोंमें हिंसाका विधान होवे, वे ग्रन्थ हमसे दूर रक्खे जावे. दया और अहिंसाकी ऐसी ही स्तुत्य प्रीतिने जैनधर्मको उत्पन्न किया है, स्थिर रक्खा है, और इसीसे चिरकाल स्थिर रहैगा. इस अहिंसाधर्मकी छाप जब ब्राह्मण धर्मपर पड़ी और हिन्दुओंको अहिंसा पालन करनेकी आवश्यक्ता हुई, तब यज्ञमें पिष्टपशुका विधान किया गया सो महावीरस्वामीका उपदेश किया हुआ धर्मतत्त्व सर्वमान्य हो गया. और अहिंसा जैनधर्म तथा ब्राह्मणधर्ममें मान्य हो गई. ब्राह्मणधर्ममें दूसरी त्रुटि यह थी, कि चारोंवर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्रोंको समान अधिकार प्राप्त नहीं था. यज्ञयागादि कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे, क्षत्री और वैश्योंको यह अधिकार नहीं था, और शूद्र विचारे तो ऐसे बहुत विषयोंमें अभागे बनते थे. इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करनेकी चारों वर्णोंमे एकसी छुट्टी नहीं थी. जैनधर्मने इस त्रुटिको भी पूर्ण की है. और पीछेसे श्रीमान् शंकराचार्यने जो ब्राह्मणधर्मका उपदेश किया है, उसमें धर्मका मुख्यतत्त्व अहिंसा बतलाया गया है. भगवद्गीतामे यह भी कहा गया है, कि भक्तियोगसे स्त्रियें तथा शूद्र मोक्ष पासक्ते है. जैनधर्मने जिस प्रकार मोक्षका मार्ग सबकेलिये खुला रक्खा है. उसी प्रकार ब्रह्मणधर्मने भी अपने मान्य ग्रन्थोंके द्वारा बतलाया है, अर्थात् अहिंसा और मोक्षका अधिकार इन दोनों ही धर्मोंमें एक सरीखे माने गये है. जैनधर्मी वेदको नहीं मानते है, इसी प्रकार ख्रिस्ती आदिभी वेदको नहीं मानते हैं; परन्तु जैनधर्म यह एक हिंदुधर्म है तथा ब्राह्मणधर्मसे बहुत सम्बन्ध

रखता है. पूर्वकालमे अनेक ब्राह्मण और जैन **पंडित** जैनधर्मके धुरन्धर विद्वान् हो गये हैं. और विद्याप्रसङ्गमे दोनोंका पहिलेसे प्रगाढ सम्बन्ध है. ब्राह्मणधर्म जैनधर्मसे मिलता हुआ है, इसकारण टिक रहा है. बौद्धधर्म विशेष अमिल होनेके कारण हिन्दुस्थानसे नामशेष हो गया. कुमारिलभट और शंकराचार्यका बड़ा वाद-विवाद हुआ था, परन्तु जय तथा पराजय **कुरोपाटकिन** तथा **कुरोकीके** समान ही हुई थी. जैनधर्म तथा ब्राह्मणधर्मका पीछेसे कितना निकट सम्बन्ध हुआ है, सो ज्योतिषशास्त्री भास्कराचार्यके ग्रन्थसे विशेष उपलब्ध होता है. उक्त आचार्यने ज्ञान, दर्शन और चारित्र (chaacter) को धर्मके तत्त्व बतलाये है, उन्होंने कहा है, कि ब्राह्मणधर्म और जैनधर्म विशेष संबंधसे वेष्टित हैं, एकही आर्यप्रजाके दोनों धर्म है. इन दोनों धर्मोंका ऐसा निकट सम्बन्ध निरन्तर ध्यानमें रखना चाहिये. और परस्पर ऐक्य बढानेका प्रयत्न करना चाहिये. स्वर्गीय मि० वीरचन्द राघवजी गांधी जो अमेरिकाको गये थे और चिकागोके प्रदर्शनके समय स्वामी विवेकानन्दजीके साथ धर्मके व्याख्यान देते थे, उन्होंने मुझसे कहा था, कि विवेकानन्द और मैं ही दोनो हिन्दूधर्मका बोध अमेरिकन् लोगोंको दे रहे हैं ऐसा मुझे जान पडता था. भाइयो ! अपने धर्म हिन्दुस्थानसे बाहिर क्यों नहीं स्थापित होना चाहिये ? अंग्रेज सरकारने हमारे हाथमें हथियार रहने देनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी और हममें उसकी प्रवृत्ति भी नहीं है, परन्तु अपने धर्मरूपी हथियारोंसे हमको सब देशोंमें विजयलाभ करना चाहिये. हम परस्पर अपने आचरण अपने धर्मानुकूल रखके चाहें जिस

जगह एकतासे रह सकेंगे. हम लोग इस समय भी यदि विजय लाभ नहीं करें तो हमारा आलस्य और अज्ञान है. सम्पूर्ण जैनी भाइयों तथा ब्राह्मणधर्म पालनेवालोंको परस्पर एक माबापके युगल पुत्रोंकी तरह तथा एकही पुरुषके दायें बायें हाथकी तरह एक समझके परस्पर हाथमें हाथ मिलाके अपने अहिंसाधर्मके अभ्युदयके लिये भेदबुद्धिरहित होकर प्रयत्न करना चाहिये. काल पाकर इस कार्यमें यश अवश्य मिलेगा ।

केशरीकी सम्मति.

" तीसरे जैन श्वेताम्बर परिषद्का कार्य बड़े ठाठके साथ पूर्ण होगया, यह समाधानकारक वार्ता है. कायस्थ, वैश्य, वैष्णवादि भाइयोकी आजकल जो जातिसम्बन्धी स्वतत्र सभायें होने लगी है, उन्हींमें जैनपरिषदकी गणना है. परन्तु जैन परिषदका कार्य इतर परिषदोकी अपेक्षा कुछ निरालेही प्रकारका है वर्तमानमें जैनियोंका जो समाज है, वह प्रायः व्यापारीलोगोका है. पूर्वकालमें जैनधर्ममें अनेक विद्वान् जन हो गये है. अतएव उनके लिखे हुए काव्य, व्याकरण, न्याय किंवा तत्त्वज्ञानके अनेक ग्रन्थ आज उपलब्ध है, परन्तु शंकराचार्यकेद्वारा जैनतत्त्वज्ञोंका निराकरण होने और वेदान्तमतकी स्थापना होनेके अनन्तर जैनियोंकी विद्वत्परम्परा कालचक्रसे लुप्तप्राय हो गई वा हालमें भी उन ग्रन्थोंके परिशीलन करनेवाले विद्वान् अधिकतर दृष्टिगोचर नही होते. धर्मदृष्टिसे देखा जावे तो इन विद्वानोंकी त्रुटिका पूर्ण करना ही जैनियोका पहिला कर्त्तव्य है. वर्तमान समयमें उन्हें इस कार्यमें ब्राह्मण लोगोंसे सहायता मिलना भी संभव है. रा० रा० तिलकने जो अपने व्याख्यानमें

कहा है, उसके अनुसार जैनियोंका तत्त्वज्ञान यद्यपि आज प्रचारमें नहीं है, तथापि जैनियोंके अहिंसादि आचारोंकी छाप आज ब्राह्मण धर्मपर पूर्णरीत्या अंकित हो रही है और यद्यपि शंकराचार्यनें जैन-धर्मका खंडन किया था, तथापि उन्हें जैनियोंके आचारोंकी ब्राह्मण धर्मपर लगी हुई छाप स्वीकार करके अपना कार्य करना पड़ा था. जैनधर्म और ब्राह्मणधर्मके सम्बन्धमें यह घटना अत्यन्त महत्त्वकी है, इसलिये उसे जैन और ब्राह्मण दोनोको अपने ध्यानमें रखना चाहिये. जैनधर्ममें वेद प्रमाण नहीं मानते है यह ठीक है, परन्तु इसका कारण श्रौतधर्मकी हिंसा है, न कि वैदिक धर्मपरम्पराके विषय अनास्था.यह बात भी हमको स्मरण रखना चाहिये.रामायण,महाभारत किंवा पुराणोंकी कथायें किंवा देवता और योगशास्त्रके तत्त्व जैनियोंको हमारे समान ही मान्य है, अधिक तो क्या जैनी भारतके आर्य लोगोंके बन्धुवर्गीय है.परकीय देशसे आये हुए नहीं हैं.एक दिन ऐसी स्थिति थी, कि वैदिकधर्मके लोग जैनधर्ममें और जैनधर्मके वैदिकधर्ममें स्वेच्छासे जब चाहे तब आ जा सक्ते थे यह पद्धति अबभी थोड़ी बहुत प्रचारमें है अर्थात् जैनियोंके वैष्णव और वैष्णवोंके जैन होनेके अब भी अनेक ताजे उदाहरण हैं. साराश, जैनधर्म यद्यपि वैदिक धर्मसे भिन्न है, तथापि दोनोका मतभेद राष्ट्रीय दृष्टिसे ख्रिस्तीधर्मके एष्टाब्लिश्डचर्च (प्रस्थापित ख्रिस्तीधर्म) और डिसेंटर्स किंवा नॉनकन्फारमिष्ट (प्रस्थापित हुए धर्मसे भिन्न) इन दो भेदोंकी नाई गौण है. यह जैन और वैदिक दोनोंको ही स्मरण रखना चा-हिये, दोनोंधर्म एक ही शरीरके दाहिनें बायें हाथ है, व दोनों अहिंसादि तत्त्वोंका संसारभरमें प्रसार करनेका कार्य अपने इष्टभूत

यदि एक विचारसे करना चाहेंगें, तो परमअहिंसा धर्मकी ध्वजा पृथ्वीके सम्पूर्ण राज्योंमें फहरानेमें कोई भी विघ्न नहीं आ सक्ता. एक समय इन दोनों धर्मोंमें थोड़ासा विरोध था, परंतु उस विरोधसे जो कुछ होना था सो हो गया है. अब ऐसा समय आया है, कि वैदिकधर्मी लोगभी आचारमे जैनधर्मी और जैन-धर्मीलोग भी तत्वज्ञानमें वैदिकधर्मी हो रहे है. यह स्थिति ध्यानस्थ करके यदि दोनो ही अपनी उन्नतिके लिये प्रयत्न करेंगे तो वह अधिक फलप्रद होगा, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है"।

"ऐसी दृष्टिसे विचार किया जाय तो जैनपरिषदको कौन २ कार्य करना है इसका निश्चय स्वयं हो जाता है. वैदिक लोगोंमें वर्तमान सामाजिक रीतिरिवाज सुधारनेका जो प्रयत्न चल रहा है, उसका बहुतसा भाग जैनियोंके लिये अनावश्यक है,क्योंकि बालविवाह किंवा जातिभेद जैनियोमे रूढ नहीं है. स्त्रीशिक्षण तथा परदेशगमनके विषय थोडी बहुत खटपट करना पडेगी, परन्तु उसमें जैनधर्मका कोईभी अवरोध नहीं; है बल्कि पूर्वसे ही इस धर्मकी प्रणाली ऐसी है, कि प्रत्येक धर्मके लोग इस धर्ममे लिये जा सक्ते है. परदेशगमन जैनधर्मियोंमें निषिद्ध है, ऐसी यदि किसीकी श्रद्धा हो, तो वह भ्रमपूर्ण है. किंबहुना अहिंसातत्वका सम्पूर्ण जगत्में प्रसार करना यह जैनधर्मका और उसका आचार यदि वैदिक लोगोंने ग्रहण किया है, तो उनका भी कर्तव्य है. इसलिये जैनसमाजको हमारी यह सूचना है; कि उसे यह कार्य उत्साहसे अपने हाथमें लेना चाहिये. राष्ट्रीय उन्नतिको मांसाहारकी अपेक्षा है ऐसा जो अनेक लोगोंका मत है, वह सर्वथा भ्रमयुक्त है. हर्बर्ट स्पेन्सर सरीखे तत्-

ज्ञानीको भी एक समय यह अहिंसातत्त्व मान्य हुआ था. यद्यपि शरीरके कुल परम्परागत संस्कारसे वह मांस छोड नहीं सका था. परन्तु इस उदाहरणसे अहिंसाधर्मकी योग्यता भलीभांति जानी जाती है, और हमारा ऐसा विश्वास है, कि इसका सर्वत्र प्रसार करनेका यदि जैनधर्मी और वैदिक धर्मी भाई प्रयत्न करै, तो उसमें उन्हें यश प्राप्त न हो, यह कभी नहीं हो सक्ता. हिन्दुस्थानी लोगोंको समझानेके लिये जैसे रोमन कॅथोलिक तथा प्राटेस्टंट लोग एक होते है, उसी प्रकार अहिंसा धर्मका प्रचार देशदेशान्तरोंमें करनेके लिये जैन और वैदिकधर्मी दोनोंको एक हो जान चाहिये, "

" धर्मग्रन्थोंका उद्धार व अभ्यास मन्दिरोंका जीर्णोद्धार और अहिसाधर्मका प्रसार इनके अतिरिक्त जैन परिषदके हाथमें लेने योग्य विषय व्यापार है. जैनधर्मीलोग प्रायः व्यापारी है यह ऊपर कहा गया है. व्यापारी होनेसे उनकी सापत्तिक स्थिति ब्राह्मणोंकी अपेक्षा उत्तम है, यह ठीक है, परन्तु इतनेपर ही उन्हें सन्तुष्ट हो बैठना लाभकारी नहीं है. उद्योगधंदा व व्यापारका इंग्रेजी अमलदारीमें जो ऱ्हास हो रहा है, उस ऱ्हाससे जैनियोंकी साम्पत्तिक स्थिति जो आज है, वह ही आगे निश्चल बनी रहेगी, ऐसा नियम नहीं है. अतएव हम उन्हें सूचित करते है, कि वे वर्तमान जगद्व्यापी व्यापारका अधिकाधिक भाग जितना अपने हाथमें आसके, उसका प्रयत्न करनेकेलिये शिक्षणद्वारा अथवा अन्य किसी रीतिसे चिन्तित रहें. यह प्रस्ताव व्यापारका है, राजकीय नहीं है. अतएव राज्याधिकारियोसे भी इस कार्यमें सहायता मिलनेकी संभावना है.

जैनपरिषदने वर्तमानमें जो विषय उठाये हैं, उनमें व्यापार विषयको जितना प्राधान्य मिलना चाहिये उतना मिला है, ऐसा नहीं जान पडता, अतएव सूचना करनेकी आवश्यकता हुई. इसी प्रकार जैनधर्मके ग्रन्थोंका परिशीलन व उद्धार करनेके कार्यमें जब आज जर्मनीके पंडित प्रयत्न कर रहें है. तब जैनधर्मी ग्रेज्युएटों (बी. ए., एम्. ए. उपाधिधारियों) को थोडे बहुत लज्जित होकर आस्थापूर्वक अपने धर्मग्रन्थोंके अध्ययनमें लगना चाहिये, ऐसी हमारी उनसे भी प्रार्थना है. ”

जैनमित्र.

(५)

जैन धर्मपर एक क्रिश्चियन मिशनरीकी सम्मति ।

मि० आबे जे. ए. डुबाई (ABBe J. A. Dubois)
प्रदेशमे मिशनरी थे आपने फरासीसी भाषामें भारत के लोगों
हाल लिखा है जिसका इग्रजी भाषामें डल्यालंडनमें सन १९१७
पा है. पुस्तकका नाम—Description of the character
mers, and customs of the people of india and
their institution religious and ciVil— है । यह
क मदरासमें सन १८७९ के सम्चतमे दूसरी वार
है—यह पुस्तक सन १७०६ में मैसूरके ऐक्टि प्रेसीडेन्ट
विलकस Major Vilkes के हाथ लगी उन्होंने कौंसिलके
रको वहुत प्रशंसाके साथ भेजी जिस चिट्ठीके साथ उन्होंने
उसमें इस पुस्तककी उत्तमता जनक यह वाक्य है " इस
कमें वहुत ठीक, और समझने योग्य वर्णन है इसमें किसी
रका सदेह करना योग्य नहीं है " कौसिलके गवर्नरनें २४
० १८०७ को इडिया कम्पनीके सुपुर्द किया जिसने सवसे
। इस पुस्तकको प्रकाश कर प्रसिद्ध किया—

इस पुस्तककी भूमिकामें सम्पादकने कहा है:—
मैंने अन्तमें जैनजातिके धार्मिक विषय और रीतिया कुछ वर्णन
है—मेरे वाद होनेवाले लेखकों को हिन्दुओं की इस मयोजनीय
। का विशेष वर्णन मालूम करना चाहिये—मेरे अनुमान से

यह जाति किसी समय सर्व एसिया में अर्थात् उत्तर में साइबीरिया से दक्खिन केप दिनतक, और पश्चिम कासपेन से पूर्व कम खटका गफ्लत फैली हुई थी।

यह पुस्तक मुझको बाबू श्याम सुन्दर दास बी. ए. एल्-एल्-बी वकील हाई कोर्ट आरासे प्राप्त हुई है।

इंग्रेजी विद्वानोंके लिये यह पुस्तक पढ़ने योग्य तथा भारत रीतिरिवाजकी समालोचना के अभिप्राय से बड़े काम की है।

अंग्रेजी व्याख्यान का भावार्थ।

" जो कुछ मैंने लिखा है वह बहुतसे विद्वानों तथा बहुतसी जैन पुस्तकोंके द्वारा जानकर लिखा है इस लिये मै साहसपूर्वक कह कहा सकता हूं कि, जो मैने वर्णन किया है वह ठीक है।

सच्चा जैनी वह है जो गृहस्थी छोड़कर तथा रागद्वेषको परि· त्याग कर सत्य आचरण करता है और पवित्र पदार्थोंमे ऐसा पक्का श्रद्धान करता है कि कि उसे जन्मपर्यंत नहीं छोड़सके। निःसन्देह जैनधर्महीं पृथ्वीपर १ सच्चा धर्म है यही सर्व मनुष्यमात्रका प्राचीन धर्म है। काल के बीतने से इस सत्य धर्म की कुछ आवश्यक वार्ताओंमे फेरफार होगया है—जब ब्राह्मणों का जोर हुआ तब उन्होंने अपने बड़ों के मान्य चरित्रों को छिपाकर उनके स्थान में ऐसी असभ्य बाते मिलादीं कि। जिनमें, प्राचीन उपदेशों का भाव नहीं पाया जासकता था. निःसन्देह वेद, १८ पुराण, त्रिमूर्ति, बिष्णुके अवतार, लिंग पूजा, गायादि पशु

पूजा, यज्ञकी हिंसा आदि कार्यों के आविर्भाव करनेवाले ब्राह्मण हैं, इन्हीं बातों को जैनी नहीं मानते है. यह ब्राह्मणों के किएहुए भेद धीरे २ प्रचलित किए गए—जैनी जो अबतक ब्राह्मणोंही के साथ थे और साधारणरीति से एक प्रकार के हिन्दूही थे और यकायक बिगाड़ करना उचित न समझ अपनीशक्ति अनुसार इन परिवर्तित नियमोंको मिटाने का यत्न करते थे जो उस पवित्र धर्म में प्रवेश कररहे थे जिसको हिन्दुस्तान की हरएक जाति बहुत प्राचीन समयसे मानती चली आरही थी ।

किन्तु जब इन प्राचीन विश्वासकारकों ने देखा कि हमारी चेष्टा इस पवित्र धर्म की रक्षार्थ निष्फलहुई जातीहै और ब्राह्मणों की यह शिक्षायें जोर पकड़ती जातीहै तब उनको प्रगट रूपमे अपनेको पृथक् करना पड़ा—निःसन्देह यह अवसर ऐसाही आ पड़ा; क्योंकि यज्ञकी भयानक हिंसा होने लगी जिसमें बिचारे जीते पशु बलि दिये जाने लगे यह बात हिन्दुओंके प्राचीन तत्वसे बिलकुल विरुद्ध थी जिसमें किसी प्रकार की हिंसा ठीक नहीं थी और ठीक २ विचारने से हिंसा की कुछ आवश्यकता भी नही मालूम होसक्ती थी—

बात धीरे २ और भी बढगई—तब जैनियोंने पृथक्ता प्रगट की तथा सत्य धर्मके विरोधकोंसे मुकाबला करने लगे और ऐसे ब्राह्मणोंसे अलग होकर अबकीसी जैनसमाजके रूपमें होगए जिसमें सतश्रद्धानी ब्राह्मण. क्षत्री, वैश्य और शूद्र होगए—यही हिन्दुओंकी प्राचीन चार जातियां है जो ब्राह्मणोंके इन भेदोंके विरुद्ध होगई और जिन्होंने इस देशके इस (Pristine) सनातन धर्मकी रक्षाकी—

इसके पश्चात् सप्तभृद्धानी बरावर ब्राह्मणोंकी इन वातोकी निन्दा करते रहे। बहुत दिनों तक केवल वाक्य द्वाराही चरचा चली किन्तु फिर युद्धके मौकेभी आनपड़े। इसमेंभी बहुत दिनोंतक जैनियोने जय प्राप्तकी—किन्तु समयके फेरसे बहुतसे क्षत्री अर्थात् राजा तथा अन्य जानियां इन ब्राह्मणोंकी मायामें फँस गई और तब इनका समूह अति प्रकर्ष होकर जैनियोंके विध्वसका उपाय करने लगा, उनके पूजनेके स्थान तथा वस्तु तोड़डाली, उनको सर्व स्थानों तथा कामोसे निकालना प्रारम्भ किया, यहां तक कि ऐसी बिपत्तिमें डाल दिया कि बहुतसे प्रान्तोमें जैनियों का चिन्ह भी बाकी नहीं रक्खा—

इस धार्मिक युद्धके प्रारम्भकी मितीका ठीक २ पता नहीं लग सका है तथापि यह असीम कालसे अबतक चला आरहा है, क्योंकि हमको निश्चय है कि चारसौ या पांचसै वर्ष का जमाना हुआ कि जैनी राजा और राजकुंवर बहुत से देशोंमें राज्य करते आते थे और उन्ही की रक्षा तथा सहायता से बहुत से मन्दिर और स्तम्भ बनवाये गये जो कि भिन्न २ प्रान्तों में अब भी इस जातिके अधिकार में पाये जाते है।

ब्राह्मण सर्व जगह फैलगये है (Pied. ominrnt) जैनियों के पास अब न भूमि है और न कोई विश्वासी कार्य्य है—अब यह हिन्दू का साधारण जीवन कृषि और व्यापार के द्वारा बिताते है। वैश्यजाति के अधिकाश मनुष्य व्यापारमें रक्तहै जैनियों में मिले

हुए ब्राह्मण अब बहुत नहीं हैं—मुझको यह मालूम हुआ है कि, मैसूर के दक्षिण माहेलपूर् गांव में ब्राह्मण जैनियों के ५० या ६० घर हैं जिनका ब्राह्मण ही गुरु है *

जैनियों के बालगोला, मधुगिरि आदि मुख्य २ मन्दिरों में जो पुजारी हैं वे वैश्य जाति के हैं।

इन वैश्यों के इस कार्य्य से ब्राह्मणों की और भी ईर्षा बढ़गई क्योंकि एक तो इन वैश्योंने जैनियों के सत्यधर्म के कार्य्यों में परिवर्तन करादिया. दूसरे अपने विरोधी ब्राह्मणोंकी कुछ लोक मूढ़ताओं को भी गृहण करलिया; किन्तु प्रत्यक्षरूप से कभी कोई तोड़ ताड़का समय नहीं आया।

जैनियों में दो मुख्य भेद है—एक तो "जैन बसरू" और दूसरे "काष्टाचन्द (स्यात् प्रयोजन काष्टा संघीसे हो) श्वेताम्बरी" यह काष्टाचन्दी संसारिक सुख कोही मुक्ति मानते हैं*

जैन बसरू और इनमें कई बातोंमें बड़ा भेद है—जैन बसरू अधिकतर हैं इसलिये हम इन्हीं की शिक्षाओं को कहेंगे।

---

* कर्नाटक देशमें अब भी हजारों घर जैन ब्राह्मणों के हैं।

जैनियों में कोई भेद ऐसा नहीं है जो संसारिक सुखको मुक्ति मानते हो, सर्व का उद्देश्य संसार से छुटनाही मुक्ति है। पादरी साहबको किसी ने ठगा, यह खबर अप्रमाणिकसी कहीं हुई मालूम पड़ती है।

जैनियोंकी धार्मिक शिक्षा ।

यह लोग एकही ईश्वर को मानते हैं जिसको जिनेश्वर, परमात्मा, परम्परावस्तु आदि नाम से कहतेहैं । लोग इसी नामसे पूजा करते हैं ।

जैनी अपने तीर्थंकर तथा चक्रवार्तियोंकी† पूजा करते हैं। उनका उपदेश केवल उस परमात्माही की पूजा करने का है क्यों कि यह तीर्थंकरभी मोक्ष होनेके पश्चात् उस परमात्मरूपही को प्राप्त हुए !

उस परमात्मामें मुख्य ४ गुण होतेहै । अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त बीर्य्य और अनन्तसुख ।

यह परमात्मा अपनेही अनन्त गुणोंमें बिराजमान तथा अपनेही स्वरूप में आनन्द मानते है–उनको इस संसार की किसी बस्तु से प्रयोजन नहीं रहता और न वह इस बृहद्र जगत् के किसी नियम व कार्य्य से प्रयोजन रखते है । वह इस जगत में प्रचलित पुण्य और पापसे कोई गरज नहीं रखते । पुण्य का स्वभाव अच्छा है इसालिये जो लोक में पुण्यकरते वे परलोक में दूसरा जन्म पाकर उसका फल पावेंगे स्वर्ग भी पुण्यात्मा जीवही पाते है । पाप का स्वभाव अशुभ है इसलिये पापी लोग नरकादि खोटी गतिमें जाकर दुख पाएगे । इस पुण्य पाप के फल में वह ईश्वर कुछ दखल नहीं देता है अर्थात् न वह लोगों के कर्मों

† जैनियों में उन सब महात्माओं की पूजन की जाती है जो मोक्षको पालेते है चक्रवर्तियों की पूजन उसी समय होगी जब वे तपद्वारा मोक्ष के पात्र होंगे ।

में और न आगामी उनके फलमें अपना कोई सम्बन्ध रखता है। पुदगल Matter अनादि से है और इस की आस्तिकता में वह ईश्वर कुछ दखल नहीं देता है। जो कुछ अब उपस्थित है सदासे रहता चला आया है, सदाही रहेगा।

न केवल पुदगल Matter ही अनादि अनन्त है किन्तु वह नियम जिनसे नक्षत्रो का गमन व उनकी स्थिति है, तथा रात्रि दिनका भेद, व ऋतुओं परिवर्तन आदि नित्य है, संक्षेपमें यही कहना है कि जो कुछ दृष्टि में आरहा है सब सदा रहेगा।

जैनियों का बड़ा भारी उद्देश्य जीवका एक शरीर से दूसरे शरीर में परिवर्तन होना है, एक जीव का अपने कृतपुण्य पाप के अनुसार मनुष्य के शरीर से दूसरे मनुष्य व पशु की पर्याय में जाकर उन्नति व अवनतिकी दशाको प्राप्त होता है।

जैनी लोग इस आगामी जन्म की स्थितिको नीचे लिखे प्रकार वर्णन करते हैं। यद्यपि मनुष्य बहुत बडे अपराध न करे तोभी यदि उस के हृदयमें कुछ भी पाप का लेश होगा तो उस को अवश्य किसी कीडे पक्षी या पशु की पर्याय में जाकर अपने पापों की मर्यादा के अनुसार हीन होना होगा।

जब पुण्य और पाप बराबर के होते हैं व पुण्य पाप से अधिक होताहै तब जीव शुभगति को पाता है। ब्राह्मण तथा गाय योनि में जाना अच्छा माना जाता है।*

---

* [illegible] कभी नहीं मानते हैं कि गाय योनि अच्छी है किन्तु [illegible] कहते हैं कि [illegible] ब्राह्मण के आचरण पालने [illegible] होना [illegible] है और [illegible] विचार का हेतु है।

जिस मनुष्य ने पुण्य करके जीवन बिताया है वह सीधा स्वर्ग को जाता है और यदि कोई पापी मनुष्य मरता है तो वह सीधे नरक में जाता है। इन उपर्युक्त बातों में जैनियों के उद्देश्य उनके विरोधी ब्राह्मणों से बहुत कम भेद रखते है किन्तु लोक तथा संसार की स्थिति बिषय में बहुत भेद हैं; क्योंकि जैनी लोग ब्राह्मणों के १४ लोक और ब्रह्मा विष्णु महेशके स्थान सप्त लोक, वैकुंठ और कैलाश को नहीं मानते हैं। जैनी लोग केवल तीनही लोक मानते है जिसको कि वे जगत्रय कहते है इसमे उर्ध्वलोक, मध्यलोक, तथा अधोलोक गर्भित हैं। इसके पश्चात् स्वर्ग नर्क तथा मध्यलोक का कथन दियाहै जिसको हमारे पाठक जैनशास्त्रोंसे भली भांति जानसक्ते हैं।

कालका भेद।

कालके छः बिभाग हैं जा सदा क्रमसे होते हैं. हरएक छः कालके अन्तमें प्रलय होती है जिसमें सर्व वस्तुये ध्वंस दशा में होजाती हैं। और जगत नये सिरेसे, बनता है।*

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, कालके पश्चात् पंचम काल है यह २१००० वर्षका होता है। यह १८०७ सन ईसवी इस पंचम कालका २४५० वां वर्ष है।

इतने समय पंचम काल का देखकर मुझे यह बिदित होता है कि ईसा की आदि में ही ब्राह्मणोसे खुल्लम खुल्ली भिन्नता हुई

---

* यह छः कालका परिवर्तन जैनमतमें केवल भरतक्षेत्रमें माना है नाकि सर्व जगत् में।

है और यह अन्य हिन्दुओंसे प्रथक हो गए है—यदि यह बात मुझे और भी साफ २ मालूम होती तो मैं बहुतसी कहावतोंकी असलियत मालूम करलेता; क्योंकि ऐसी कथाओंहीके द्वारा ब्राह्मण और जैनियोंमें भेद होरहा है छठाकाल १००० वर्ष * रहेगा जिसमें जाति राज्य प्रजा आदिका भेद न रहेगा असभ्यता आजावेगी फिर प्रलय होगी पश्चात् फिर पंचम, इस प्रकार काल आवेगें।

जैनियोंका ज्ञान।

जैनियों की विद्या और विज्ञान चार वेद २४, पुराण और और ३४ शास्त्रोंमें गर्भित है—२४ पुराण २४ तीर्थकरों के है।

चारवेदोंके नाम प्रथमानुयोग चरनानुयोग, करनानुयोग और द्रव्यानुयोग हैं इनको आदीश्वर भगवान् ने लिखा था (यहां "वर्णन कियाथा" ऐसा होना चाहिए.) यह आदीश्वर जैनियों में बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध पुरुष होगए हैं, यह २४ तीर्थकरों के पहले हुए और स्वर्ग से इस जगत् में आये—* उन्होंने हमारीही तरह ब्राह्मण, तपस्वी और निर्वानी की तरह जीवन व्यतीत किया. वह एक कोट पूर्व अर्थात् १ कोटानुकोट वर्ष जीते रहे. ×

---

* दिगम्बर जैनी इस काल को भी, २१००० वर्षका मानते हैं।

* २४ तीर्थंकरों में १ सर्वार्थसिद्धि से तथा स्वर्ग से आए अन्य मनुष्यों की तरह [illegible] माता के गर्भ से जन्मे।

× आदिनाथ की अवस्था ८४ लाख पूर्व की थी—[illegible] लाख वर्षका १ पूर्व और ८४ लाख पूर्वका १ पूर्व होता है।

बह न केवल बेदोंही के सम्पादक थे बल्कि उन्होंने जाति विभाग किए, उनके रहने के व राज्य नियम बनाये तथा वे आज्ञायें बनाई जिनके कारण आजतक सर्व जैनी एक दूसरे से मेल रखते चले आरहे है—**संक्षेप में जैनियो के आदिश्वर वही हैं जो ब्राह्मणोंके ब्रह्मा थे और स्यात् दोनों एकही प्रकारसे हुए हों**

शलाका पुरुष ।

आदिश्वर के सिवाय ६३ महान पुरुष और माने जाते हैं *इनका चरित्र प्रथमानुयोग तथा २४ पुराणों में है इनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बासुदेव, ९ बल बासुदेव और ९ बलरामहुए हैं।

यह २४ तीर्थंकर इन पवित्र पुरुषों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए है। इन सबने निर्वाण जाने वालों कीसी दशा में जीवन व्यतीत किया। इनमें किसी प्रकार साधारण मनुष्य कीसी निर्बलता नहीं थी।

बहुत दिनोतक इन्होंने इस जगत में पवित्रता से जीवन निर्वाह किया फिर संसारसे बिरक्त होगए और तपके द्वारा पौद्गलिक शरीरों को धीरे २ अपनी स्वच्छ आत्मा से हटाकर मोक्ष स्थान को प्राप्त किया।

यह तीर्थंकर स्वर्ग से आये और क्षत्री कुल में पैदा हुए वे **फिर दीक्षाकी रस्म के पश्चात् ब्राह्मण होगये**। अपने जीवनमें उन्होंने सर्व शुभ कार्य किए. लोगों को आदीश्वर के उपदेशे हुए नियमोंपर चलाया और अपने आप तप और ध्यानमें लीन होगए। इनमें बहुतोंकी बहुत २ अवस्थाएँ थीं. प्रथम की कई करोड़ बर्षकी

* आदीश्वर भी उन्हीं ६३ मेंही है।

आयु थी शेषोंकी अवस्था क्रमशः कम होती गई। यहांतक कि अन्तिम तीर्थंकर ८० वर्षसे अधिक नहीं रहे (दिगम्बर जैनशास्त्रों में ७२ वर्ष आयु मानी है) यह सर्व चौथे कालमें हुये।

इनमें बहुतोंने साधु होनेके पहले विवाह किया किन्तु पश्चात गृहस्थ धर्म छोड़कर ध्यानी और तपस्वी कासा जीवन बितानेलगे। कई कुमार अवस्थामेंही मुनि होगये। २४ तीर्थंकरोंके नाम ये हैं।

वृषभः, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभु, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभु पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान्स, वासपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति कुंथ, अरह, मल्ल, मुनिसुव्रत, नमि. नेम, पार्श्व और वर्धमान, यह १२ चक्रवर्ती भी स्वर्गसे आये और राजाओंके यहां जन्म धारण किया। इनमेंसे तपस्वी होकर मृत्युके पीछे अनन्त सुखका स्थान मोक्षको प्राप्त हुए, कई फिर स्वर्ग गये और बाकी कईयोंने यहां असभ्य रीति से जीवन व्यतीत किया और इसी कारण नर्कमें गये।

यह १२ चक्रवर्ती सदा परस्पर * युद्ध करते रहे थे। इनका सामना‡कभी ९ नव प्रतिवासुदेव (प्रति-नारायण) ९ वासुदेव और ९ बलदेवोंनेभी किया (यहां फुटनोट) है इनका अर्थ यह है " [illegible] राम

* [illegible]

‡ [illegible]

जैनियोंके बलरामोंमें पाये जाते है, जैसे कृष्ण ९ वासुदेवोंमेंसे एक हैं। ब्राह्मणोने विष्णुके अवतारोंको पूर्ण करनेके लिए इन दो नामों को अपनेमें मिला लिया। किन्तु यह ब्राह्मणों के देव उस समय तक नहीं मालूम किए गए जबतक कि उन्होने मृत्यु प्राप्त कर नरक के दुःख नहीं सहे जैसा कि जैनी भी कहते हैं) *

यह २७ पुरुष अर्द्ध चक्रवर्ती थे इनका चरित्र प्रथमानुयोग, २४ पुराण व अन्य शास्त्रोंमें दिया हुआ है।

जैनियोंका दूसरा वेद चरणानुयोग है। इसमें भिन्न २ पदोंके योग्य नियमादि तथा समाज की स्थिरता के नियम व अन्य आचरण सम्बन्धी नियमादिका वर्णन है।

तीसरा वेद करणानुयोग है जिसमें तीन लोक का स्वभाव तथा उनके नियमादिका वर्णन है।

चतुर्थ वेद द्रव्यानुयोग है जिसमें तत्त्व निरूपण है। इसमें ६ द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और ९ पदार्थोंका, तथा और भी जैनियोंके धार्मिक तत्वों का विशेष व्याख्यान है।

जैनियों में संन्यासी निर्वाणी का पद।

सबसे उच्चपद जोकि मनुष्य धारण कर सक्ता है वह संन्यासी निर्वाणी अर्थात् दिगम्बर मुनि का पद है। इस अवस्था में मनुष्य साधारण मनुष्य न रह कर अपने ध्यान के बलसे परमात्मा का मानों अंश होजाता है। जब उसका ध्यान सर्वोत्कृष्ट दशा

*जैनी केवल कृष्णको नर्क गति कहते हैं. रामने तप करके मुक्ति पाई है।

को पहुंच जाता है तब वह मृत्यु के पहलेही परमात्मारूप होकर मोक्षकीनी अवस्था प्राप्त करलेता है।

इस देश में अब कोई एक निर्वाणी नहीं होता है इसीसे अब कोई मोक्ष पाने योग्य नहीं है;क्योंकि मोक्ष पाने योग्य होने वालेको जन्म से ब्राह्मण + होना चाहिए तथा निर्वाणी की अवस्था में आचरण करना चाहिये।

स्त्रियां इस अवस्था को कभी धारण नहीं करसकतीं इसीसे मोक्ष की पात्र नहीं हैं।

कोटानुकोट वर्षों के पश्चात् सर्व * मनुष्य नानाप्रकार जन्म को धारण करने के पश्चात् निर्वाणी साधु होते हैं और तब मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

किन्तु इस साधु दशाको धारण करने के पहले यह आवश्यक है कि प्रथम ११ प्रतिमाओं में होकर साधु होने योग्य योग्यता को प्राप्त करले। वह ११ दर्जे यह हैं—दर्शन, व्रत, सामायक, प्रोषधोपवास, सचित्त विरति, रात्रिभुक्त (विरति) ब्रह्मचारी, आरम्भ विरति, परिग्रह विरति, अनुमति विरति, उद्दिष्टव्रत।

जब मनुष्य निर्वाणी साधु होजाता है तब उसको इस संसार से कुछ प्रयोजन नहीं रहता। और वह पुण्य पाप दोनों बड़ी, को एकही दृष्टिसे देखता है—उसको सबकी इच्छायें

तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होतीं और न उनका फल वह भोगता है. न वह किसी से राग और न द्वेष करता है। वह विना दुख मालूम किए सर्व प्रकार के उपसर्गों को सहन कर सकता है।

भूख और प्यास उन्हें कष्ट नहीं देते वह सप्ताह और मास विना कुछ खाए हुए बिता सकते है। जब वह भोजन करते हैं तब जो वस्तु प्राप्त हो शरीररक्षाहेतु भक्षण कर लेते हैं (यह ग्रन्थकारने लिखा है कि चाहे पशु चाहे शाक जो मिले सो भक्षण करले. यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसे साधु श्रावक के यहांही आहार करेगें जिसके यहां कभी मांस बनताही नहीं है। यदि भूख से मुनिके भोजन में मांसकी क्या बात बाल भी निकल आवे तो मुनि भोजन नहीं करेंगे) उनको किसी बातकी छायाकी जरूरत नहीं है। खाली मैदान या छायादार जगल उनके रहनेका स्थान है। किसी बातकी चाह न होनेके कारण वह अन्य मनुष्योंसे दूर तथा स्वतंत्र जीवन बिताते है। यद्यपि बिलकुल नग्न होतें हैं तथापि उनको वायु, मेघ, गरमी, व सरदी की कुछ परवाह नहीं होती। मनुष्य चाहे जितने बडे पदके हों उनका राग उनसे नहीं है. उनके शुभ तथा अशुभकार्य्योंमें मुनिको कोई चिन्ता नहीं वह न किसी मनुष्यको देखते हैं और न किसीसे मिलना चाहते है. वह अपने स्वरूपके भाव सिवाय कोई अन्य विचार तथा राग भाव नहीं रखते हैं। अपने आत्मिक भावोंमें जो भीजा हो उसको क्यों इस संसारकी आर उसकी निःसार क्रियाओंकी चिन्ता होगी।

इस प्रकार तप, ध्यान तथा उपसर्ग सहनेसे साधुका शारीरिक ढांचा अवश्य धीरे २ क्षीण होता है। निर्वाणी साधुका शरीर अन्तसमय कर्पूरके समान उड़जाता है; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, जिनसे शरीर बना है सर्व भिन्न हो जाते है केवल निर्वाणी साधुके शरीरकी छाया मात्र रहजाती है। इस दशा सेही वह सिद्धलोकमें जाते हैं और सिद्धोमें मिलकर अनन्तसुखको सदा भोग्य करते है।

जैनियोंमें व्यावहारिक नियम।

जैनियोंमें हिन्दुओं के और विशेष कर ब्राह्मणो के अनुसार ही बहुत से व्यवहार के नियम है। शौच और अशौच का भेद औरभी अधिक है और अन्तर और बाहर की शुद्धता के एकही नियम है। इनके नियमों में भी मंत्र तथा और क्रिया होती है। ब्राह्मणों की रिवाजें जनेऊ, बिवाह, मृत्यु आदिकों को कुछ २ जैनी लोग भी मानते हैं किन्तु कुछ नियम जैनियों में विशेष भी है। सर्व जातिया तीन धागेका जनेऊ पहनती है जोकि उनके गुरुओं के द्वारा बालक आवस्थामें दिया जाता है। यह लोक सूर्य्य अस्त के बाद और सूर्य्य उदय के पहले कोई भोजन नहीं करते है। सर्व भोजन दिनही में किये जाते है और जीवन की सर्व अवस्थाओं में यह नियम दृढ़ रहता है।

इनके यहां मृतक मनुष्यों के स्मरण का उत्सव मनानेके लिये कोई तिथि और दिन नियत नहीं है। यह बात (श्राद्धपिंडाई) ब्राह्मणों में एक आवश्यक मानी जाती है जैनी लोग गाड़ने

के पश्चात् मृत्यु पुरुषों को भूलजाते है और मरने के तीन दिन पश्चात् उनके यहां और कोई बर्णन नहीं होता है। *

यह लोग और हिन्दुओं के समान अपने मस्तकोंको गावेरकी राख से नहीं मलते हैं किन्तु चूंकि भारतमें सूना माथा रखना खराब समझते हैं इसलिये यह लोग भी चन्दन का टीका लगाते हैं कुछ लोग अपने पांच मुख्य तीर्थंकरोंके सन्मान में सिर गरदन पेट और हर एक कन्धे परभी चंदन लगाते हैं।

भोजन के विषय में यह ब्राह्मणों से भी अधिक नियम बद्ध है यह लोग मदिरा और मांससे तो बिलकुल परहेज रखतेही हैं किन्तु कुछ गाजर मूली आदि तरकारियों व कातृकेई और पुडेलेनकेई नामकी तरकारियां जो मैशूर देशमें होती है उनकोभी नहीं खाते हैं जिनको कि ब्राह्मण बिशेष खाते है।

इसप्रकार विचार होनेका कारण यह है, कि जैनी लोग उन जन्तुओं के प्राणनाश से भय करते है जो इन पौधोंमें पाए जाते है इस लिये जैनियों के खाने योग्य वस्तु चावल और दूध के अतिरिक्त इस देश (मैसूर) में बिशेषकर मटरकी फली है जो यहां विशेष पैदा होती है।

ब्राह्मण प्याज बहुत शौक से अपने रसोईघरोंमें प्याज रखते हैं जिसे जैनी लोग बिलकुल नहीं खाते हैं।

---

*इस विषयको जैन शास्त्रों में देखकर जलाना लिखना उचित था विद्वानों को निर्णय करना योग्य है क्योंकि क्रियाकोश में दग्ध करनेवालेके लिये १०दिन तक पृथक बैठकर एक भुक्त करनेका नियम दिया हुआ है

जैनी लोग मधु (शहद) को भी बीमारी आदि कदापि किसी अवस्था मै नहीं खाते है ।

यह लोग जन्तुओंके प्राणनाशसे इतना भय रखते हैं कि इनकी स्त्रियां अपने घरोंमें हिन्दुओं की रिवाज के अनुसार गोबर लीपने के पहले बहुत धीरे २ झाड़ू देकर इधर २ चट्टान पर घूमनेवाले कीड़ों को हटा देती है जिसमें लीपनेके समय किसी के प्राण न जायँ । इसी तरह जब वे रसोई बनाती है तो बहुत सावधानी से प्रत्येक वस्तुको जाच लेतीहैं और जो कीड़े उनकी दृष्टि में आते है उनको बहुत कोमलता से हटा देती है इस उद्देश को दृष्टि मे धर कि कीड़े का मारना मनुष्य मारने के पापसे कम नहीं है । वे लोग उन जानवरों कोभी नहीं मारते हैं. जिनका स्वभाव मनुष्य को दुख देनाही है जब कोई खटमल बहुत सताता है तब वे उसे धीरे से हटाकर ऐसे स्थान पर डाल देते है जहां उसका नाश नहीं होवे और अपनी हानि भी न होवे ।

इसी जीवहिंसा के भय से जब यह कुंड तालव या कूप से पानी पीनेको निकालते है तब घड़े के मुंहपर मोटा कपड़ा धरकर पानी को कीडो से साफ कर लेते है।एक प्यासा पथिक इसी तरह जब मार्गमें किसी नदी में पानी पीने उतरता है तो (बरतन न रहने पर) अपने मुँहपर १ कपड़ा ढक लेता है तब पानी पीता है कि कीड़े मुंह में न चले जाये ।

उक्त रीतियों और उद्देश्यों मे भेद होते हुए भी यह लोग इस प्रांत के बहुत भागोंमें बहुत स्वतन्त्रता भोग रहे है. कई जिलों में इनके रमणीक मंदिर है जहा वे किसी को विघ्न न करते हुए

अपनी रीति के अनुसार अतीव समारोह से पूजादि करते है।

मैसूर के श्रवण बेलगुल गांव में जो कि श्रीरंगपट्टन से कुछ दूर है इन लोगो का एक प्रसिद्ध मन्दिर है भिन्न २ स्थानों से अनेक यात्री इस पवित्र स्थान के दर्शन को आते हैं. मुझे खबर लगी है कि इस जातिके एक गुरु अर्थात् आचार्य्य जो पहले इस मंदिर में रहते थे ४ वर्ष हुए इस मंदिर को छोड़ कर मालाबार के तटपर एकांत समझकर इस कारण चले गये कि जो पुरुष देश-बासी इस मंदिर को देखने आते थे वे अपने बरिया नौकरों और कुत्तोंको लिये हुये मंदिर के भीतर चले जाकर मंदिर को अपवित्र करते थे और यह साधु उनके रोकने का कोई उचित उपाय न मालूम कर सके थे।

इस प्रकार के दृष्टान्तो से यूरूप वासियों को यह सीख लेना चाहिये कि उसको हिन्दुओं से मिलनेमे थोड़ा और (circumspeet) सावधान होना चाहिये और उनको हिन्दुआके (inveterate prejudice) लिये कुछ सन्मान तथा नम्रता होना चाहिये एवम् इनके चित्तोंमें अपनी ओरसे कोई दुःख व घृणा न पैदा हो ऐसा यत्न करना चाहिये।

यह श्रवणबेलगुलका गांव तीन छोटी २ पहाड़ियोसे घिरा हुआ है और इन पहाड़ियों के बीचमें यह प्रसिद्ध जैनमंदिर बना हुआ है. इन पहाड़ियोंमे से एक पहाड़ी की चोटी पर पत्थर की चट्टान से १ बड़ी भारी मूर्ति ६० या ७० फुट ऊंची काट लीगई है. यह मूर्ति कई कोससे दिखलाई देती है. १ चट्टानकी गहराईसे

इतनी बड़ी मूर्ति काट कर बनाना निःसन्देह बड़े परिश्रमका काम है यह भी १ हिन्दु कारीगरी का नमूना है और बहुतसे युरुपदेश के यात्रियोंको भीं यह मूर्ति अपने संस्थान (size) में बहुत ठीक जंची है. यह प्रसिद्ध निर्वाणी साधु गौतमकी मूर्ति है जो कि आदीश्वरके छोटे पुत्रथे तथा यह मूर्ति खड्गासन नग्न दिगम्बर रूप में है।

इन्ही की मूर्ति पहाड़के नीचे मंदिरमें भी पद्मासन दिगम्बररूप में उपस्थित है दीवालोंके आगे वेदियां है जिनमें २४ तीर्थंकर तथा अन्य अन्य पूज्य वस्तुओंकी मूर्तियां हैं। यह वात ध्यानमें रखने योग्य है कि, जैनियोंके बड़े २ मन्दिरोंमें पूजने योग्य बस्तु बहुत बड़े २ संस्थान की नग्न दिगम्बर मूर्तियांही मिलती है जिसमें यह बात प्रमाणित होती है कि ये मूर्तियां इनके कुछ निर्वाणी साधुओंकी यादगार दिथर रखने के लियेही निर्मापित कीहुई है।

जैनी लोग न ब्राह्मणो की रीतियों में दखल देते हैं और न यह चाहते है कि ब्राह्मण लोगोंके द्वारा इनकी रीतियों में कुछ विघ्न पड़े। यदि यह जाति किसी प्रकार उच्चता करने की चेष्टा करती है तो ब्राह्मण लोग ईर्षा प्रगट करते हैं और जैनियों की ओर किंचित् भी ध्यान तथा उनका सन्मान नहीं करते हैं।

दोनों ओर ऐसा दृढ़ विचार जमगया है कि दोनों जातियां किसी बातमें एक मत नहीं होती हैं। एक प्रकार का अमिट अविश्वास इन दोनों को भिन्न किए हुए हैं यदि किसी कारण वश परस्पर एक दूसरेसे एक सम्मति होजाते है तबभी विश्वास अन्तर

---

१ गौतमनदी गोमदेव अर्थात् बाहुबलिजी जोकि श्रीआदिनाथ के छोटे पुत्र थे.

से नहीं होता किन्तु जब वे बहुत मिलते है उनकी अन्तरंग की घृणा औरभी बढ़ जाती है. यह बात नने में आती है कि, ब्राह्मणों की जातियां अपने नित्य की ईश्वर प्रार्थनाओं में जैनियों के विरुद्ध भी प्रार्थना को संयुक्त रखते है जब कि जैनी भी जब **प्रातःकाल जागते हैं तब यह कहते है *' ब्रह्मक्षयम् ' अर्थात् ब्राह्मणों की क्षय हो ।**

इस प्रकार का अन्तरग द्वेष जो इनमें उपस्थित है इनके परस्पर के कार्यों में सदा प्रगट होता रहता है । जिन देशोमें ब्राह्मणों की उच्चता होती है वे जैनियों को कार्यहीन रखने की चेष्टा करते हैं और जहां जैनियों का बल होता है । वहां जैनी ब्राह्मणो के घमंड को घटाने की तथा उनको इस बात के याद दिलाने की चेष्टा करते है कि इन से पूर्व के ब्राह्मणों द्वारा हमारे प्राचीन पुरुषों को किस २ प्रकार का दुःख तथा हानियां प्राप्त हुई है ।

जैनगजट.

---

* यह बात और किसी विद्वान् के मुख व और किसी प्रकार से नही सुनने म आई ।

(६)

जैनधर्म ।

[जैनधर्मानुयायी मि० हर्बर्टवारनके " जैनीजम " नामके लेखका अनुवाद ।]

जैनधर्मके विषयमें कुछ लिखनेके लिये मुझसे कहा गया है, इसलिये नीचे लिखे विचार और श्रद्धानोंके लिये मैं जैनधर्मका ऋणी हूं । मैं वही लिखूंगा कि, जिसकी मै कदर करता हूं । और चाहे जिस तरहसे हो, जिसे मैं अपने लिये तो उपयोगी समझता हूं । जैनसिद्धान्तोंका मैं जिज्ञासु हूं (विद्वान् नहीं) इसलिये मै स्वयं उनकी फिलासोफीका बिवरण नहीं कर सकूंगा, परन्तु उन सिद्धान्तोंके साथ मेरा सौभाग्यजनक परिचय होनेसे मुझमें जितना बुद्धिका विकास हुआ है, केवळ उतना ही लिख सकूंगा। जीवनकी धार्मिक दृष्टिकी अपेक्षा तत्त्वज्ञानकी ओर मेरी रुचि अधिक है, इसलिये तीक्ष्ण हृदयधारी व्यक्तिको नीचे लिखा हुआ विषय शायद अरुचिकर प्रगट होगा।

अस्तित्वके सम्बन्धमें अभी तक जो सिद्धान्त अनिर्णीत हो रहा है, जैनधर्ममें मुझे उसका खुलासा मिलता है; और कठिन प्रश्नोंके सरल उत्तर मिलते हैं—कि जो उत्तर सत्य रीतिसे सरलताके साथ खंडन नहीं किये जा सक्ते और जो मस्तकमें प्रवेश करके उसके प्रत्येक अंशको परितृप्त कर देते हैं, और यदि उनके सन्मुख शोध पूर्वक की हुई टीकासे आक्रमण किया. जाय तो वे उत्तर और अधिक सुन्दरताके साथ भासमान होते हैं । अब मैं प्रश्न उठाकर

उनके उत्तरोंकी ओर झुकता हूं;—अपना जीवन किसके लिये है? आत्मा क्या है? और पुद्गल, आकाश, काल, द्रव्य, ईश्वर, कर्मोंका फल, दंड, इत्यादि क्या हैं?

सबसे अधिक संतोषकारक बात तो यह है कि, विश्वका तत्त्व नित्य है। अनंत भूतकालमें ऐसा कोई भी समय नहीं था कि जब पुद्गल, आत्माएं, आकाश, काल, आदि अस्तित्व ही नहीं रखते हों। इन पदार्थोंका अस्तित्त्व परम भूतकालमें नहीं मानना असत्य प्रतीत होता है और जब ये वस्तुएं सदासे विद्यमान रहीं हैं, तब सृष्टिकी उत्पत्तिकी आवश्यक्ता नहीं थी। यदि यह सिद्धान्त माना जाय कि, प्रत्येक वस्तुको पैदा करनेकी आवश्यक्ता है, तो फिर एक वस्तु अर्थात् ईश्वर ऐसा है कि, जिसको सृजानेकी आवश्यक्ता नहीं है, इस कथनके सन्मुख और कौनसा दूसरा कथन असंगत हो सक्ता है? प्रत्येक जीव अविनाशी है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु सर्वदा वही है और अन्य नहीं होती; यह बात हृदयको सबसे अधिक तृप्ति करती है। परंतु यह बात केवल एक दृष्टिसे है; कारण यहां जो अपेक्षा ली गई है, उसके सिवाय दूसरी अपेक्षाओंमें उपरिलिखित कथन स्वीकार नहीं किया जा सक्ता है।

अनंततासे अनंतता तक आत्माका इतिहास है, यह वाद मुझे रुचता है। वह अनंतता आत्माके इतिहासके तीन भाग करती है:—(आत्माके) विकासके पहलेका, विकासक्रियाका और विकासके अनन्तरका (निगोद, गुणस्थान और मोक्ष)। अर्थात् इस समय हम आत्मविकासकी क्रम—क्रियामें हैं, उस विकासकी

आदि एक कालमें थी, और उसका अन्त एक समयमें आवेगा। आत्मविकास प्रारभ होनेके पहले आत्मा अनन्त भूतकालमें सदाके लिये अविकासित अशुद्ध स्थितिमें था। जैसे सुवर्णकी एक डली अपनी वर्तमान कालकी शुद्ध स्थितिके पहले भूतकालमें सदासे सुवर्णरजमिश्रित मिट्टीकी अवस्थामें होती है, प्रायः ऐसी ही स्थिति आत्माकी समझना चाहिये। आत्माकी विकास क्रिया सम्पूर्ण उन्नतिमें होनेके पश्चात् बन्द होती है, पीछे वह फिरसे अशुद्ध नहीं होता है और नित्य आनन्दमें, अमर्यादित ज्ञानमें, सब समय ही अपने स्वरूपमें जन्म मरणसे अबाधित रहता है।

आत्मविकास अपने पहले क्रमोंमें (मिथ्यात्वगुणस्थानमें) मन्दगतिवाला दिखलाई देता है। उसके पश्चात् जीवनकी विशिष्ट दशा (सम्यक्त्व) आती है तत्पश्चात् विकासश्रेणी उस व्यक्तिको प्रतीति पूर्वक हस्तगत होनेसे वह बहुत अधिक वेगवाली होती है।

मै जैसा समझता हूं, तदनुसार जैनधर्मका यह सिद्धान्त हैं कि, पुरुषमें जो बुरा भला (सदसत्) है, वह सब उसके भूतकालमें किये हुए कर्मोंके निमित्तसे है। पुरुष जो कुछ अनुभवन करता है, उसके लिये वह स्वय उत्तरदाता है और जितना वह स्वयं अपने ऊपर करेगा, उतना ही अनुभवन करेगा। इस प्रकारसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता सुनिश्चित है। वह व्यक्ति स्वयं जिस प्रकारके जीवनकी विशेष इच्छा रखता है, ठीक उसी प्रकारका जीवन पानेके लिये स्वतत्र है। अब ज्यों ही कोई व्यक्ति अपना जीवन अपने हस्तगत करता है, त्यों ही उसे किसी रक्षककी आवश्यक्ता जान पडती है,

अर्थात् उसे अपने उन पूर्वजोंकी सहायताकी आवश्यक्ता होती है, जोकि उसी मार्गपर उसके सम्मुख गमन कर चुके हैं। इस प्रयोजनके लिये कौन उसकी तृप्ति करेगा ? केवल वही कि जो सम्पूर्ण और सर्वथा अमर्यादित (अनंत) ज्ञान प्राप्त कर चुका है और जो अदया (हिंसा) और निर्बलतासे सर्वथा विनिर्मुक्त है। मार्गेच्छुकको ऐसाही व्यक्ति तृप्ति दे सक्ता है और वह ऐसा ही हो, दूसरे प्रकारका नहीं। मार्गेच्छुक यही समझता है कि, केवल वे ही व्यक्ति उसको सम्पूर्ण भूलोंसे रहित सत्य सत्य मार्ग बता सक्ते हैं, जिन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त कर ली है। ऐसे व्यक्तिके कदाचित् अभावमें वह उन व्यक्तियोंकी शिक्षा स्वीकार करेगा, जो सर्वज्ञ प्रणीत मार्गपर गमनकर रहे है तथा इस धर्मेच्छुकको यह अवश्य निश्चय होता है कि जीवनके नियमोंके सूत्र ऐसे होने चाहिये कि जिनमें सम्पूर्ण जीवोंकी पवित्रता मानी गई है तथा किसी भी जीवकी पर्यायको कष्ट देना वा हिंसा करना हिंसकके अभिमान और असत्य शिक्षाके सिवाय और कुछ नहीं है (अर्हत् गुरु और धर्म)

जिस पुरुषको अपने आपको शासन मार्गमें रखना अर्थात अपना स्वतः जीवन बनाना है, उस पुरुषको इस तरह जविन बिताना चाहिये कि पूर्व दृढ निश्चय किया हुआ फल स्वयं आता चला जाय, तथा जो पुरुष यह निश्चय करता है कि, आत्माके यथार्थ निश्चय स्वभावमें कुछ भी दुःख, अज्ञानता वा वीर्यहीनता नहीं है वह पुरुष नियमपूर्वक केवल वे ही कार्य करता है कि, जिनसे आत्माका निश्चयस्वरूप जैसे कि आनन्द, ज्ञान और वीर्य प्रगट हं

और उसे जिनसे दुःख अज्ञान और बलहीनता आवे, ऐसे कार्योंको त्याग करनेकी दृढ़ अभिलाषा होती है। इस कथनका अभिप्राय यह है कि, वह पुरुष अपना संकल्प अत्यन्त दृढ़ कर लेता है (यही व्रत है)।

और तब यह सिद्धान्त निकलता मालूम होता है कि जो ज्ञान, धारणा, अथवा आत्माके किसी भी गुणकी कदर करता है वह पुरुष उन गुणोंको जिस जिस स्थानमें वे मालूम होंगे प्रतिपालन करनेमें कष्ट उठाएगा और उन गुणोंका अपनेमें अथवा दूसरे जीवोंमें नाश न होने पावे इसका यत्न करेगा। यह सिद्धान्त ऐसा मालूम होता है कि यदि मै कोई ऐसा कार्य करूं कि जिससे दूसरे जीवमें अज्ञान उत्पन्न होना अनुमानित किया जाय, तो मैं एक ऐसी शक्ति उत्पन्न करता हूं और उसका व्यवहार करता हूं कि, जो स्वयं अज्ञानता उत्पन्न करनेके स्वभावको उत्पन्न करेगी और जब यह शक्ति उत्पन्न करनेवाला 'मैं' ही हूं अर्थात् जब 'मै' ही इस कर्मरूपी यंत्रके साथ सम्बन्ध रखता हूं तो यही शक्ति किसी न किसी समयमें मुझे किसी प्रकारका यह अथवा दूसरी जातिका ज्ञान जानने देनेमें बाधा डालेगी। (इसका नाम यदि मैं भले प्रकार समझता होऊं, तो 'कर्म' है)

दूसरा एक उपयोगी विषय यह है कि, प्रत्येक व्यक्ति अपना अध्यात्मिक विकास करनेके लिये अपने ही आधुनिक संयोगोंका उपयोग ले सक्ता है। इस विकासको प्रारम करनेके पहले किसी भी व्यक्तिको एक क्षणभर भी कोई राह देखनेकी जरूरत नहीं है।

परन्तु उसे विकासश्रेणीमे अपनी अवस्थाका अन्दाज (एस्टीमिट) तो अवश्य कर लेना चाहिये। और तत्पश्चात् उस अवस्थाके अनुकूल नियमोंका आचरण करना चाहिये।

एक दूसरा सबसे उपयोगी विषय यह है कि, अखिल विश्वमें जो सब है, वह " मै " (जीव) और " जो मै नहीं हूं " (अजीव) ये दो वस्तुएं है। इस समय वस्तुतः अज्ञानी व शक्तिहीन आदि सब मै हूं। क्योंकि " जो मै नहीं हूं " उसका कितना ही भाग मेरे साथ एकमेक मिश्रित हो रहा है। " मै नहीं हूं " यह वैभाविक द्रव्य है कि जिसका सदा मुझमें रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। और एक ओरसे देखा जाय तो वह मेरा कोई भी अंश नहीं है। तो अब क्या करना चाहिये ? यह वैभाविक द्रव्य मेरेसे ही मेरी ओर अविच्छिन्न रीतिसे आकर्षित होता रहता है (आस्रव) और मेरी आत्मामें मिश्रित होता रहता है (बंध)। इस प्रवाहको रोकना अथवा उसका आकर्षित करना बन्द करना, यही मुख्य कार्य है और इस तरह इस जातिका (पीछेका) और कोई नवीन द्रव्य (नवीन कर्म) आने नहीं पाता है (संवर); पश्चात् उद्यम करके मेरेमें पूर्वमें एकत्रित हुएको दूर करना चाहिये (निर्जरा) अन्तमें परिणाम यह आवेगा कि मेरा आत्मा शुद्ध स्वच्छ और अपने अविनाशी स्वरूपमें जैसा कि वह स्वाभाविक है, हो जायगा (मोक्ष)।

वाणीमें (जिनवाणीमें) कथञ्चितकी शिक्षा बडी ही संतोषजनक है। कोई जब कुछ बोलता है,तब उसमें उसके सिवाय दूसरे विषय सम्बन्धी दूसरा सत्य हमेशा रहता है। और जब असलमें बोलनेकी

क्रिया हो रही है, तब यह दूसरा सत्य यद्यपि वहां अपना मतलब रखता है, परन्तु शब्दोंसे प्रगट नहीं किया जा सक्ता। यह शिक्षा प्रकाश करती है कि, वस्तुओं सम्बन्धी कथन मात्र उस वस्तुके उन्हीं भागों, पर्यायों, और सम्बन्धोंके विषयमें किया जाता है कि जिनकी तरफ उस कथनका सम्बन्ध लगना संभव है परन्तु उस सम्पूर्ण वस्तुके हरएक भाग अवस्था और सम्बन्धको सदाके लिये वह कथन नहीं कह सक्ता है (इसका नाम स्याद्वाद है) ।

एक और सबसे उपयोगी विषय जो मुझे दिखलाया गया था, यह है कि ज्ञान चेतना ये पुद्गलकी गतिसे--अणु अथवा परमाणुके आन्दोलनसे जातिमें भिन्न है। पुद्गलकी गति हो सक्ती है और पुद्गलका ज्ञान भी हो सक्ता है। और जो गतिका ज्ञान वा जानना, यह स्वयं किसी प्रकारकी गति हो, तो फिर ज्ञान यह एक गतिकी गति है--कि जिसके कुछ माने नहीं है। और इस रीतिसे ज्ञान किसी भी प्रकारकी पुद्गल गतिसे भिन्न होनेके कारण वह कुछ है--वह किसीका गुण है--अथवा किसीका स्वभाव (लक्षण) है। जिस वस्तुको ज्ञान है वह कोई वास्तविक वस्तु-पदार्थ है और इस वास्तविक वस्तुको " आत्मा " यह नाम दिया जा सक्ता है। स्थिर हो, चाहे गतिमें हो, परन्तु पुद्गलमें चेतना नहीं है; चेतना आत्मामें है।

दूसरा सिद्धान्त पुनर्जन्मका है। आत्मा है, था, और सर्वदा किसी न किसी अवस्थामें अविनाशी रहेगा; और जबतक यह सम्पूर्ण वैभाविक पौद्गलिक वस्तुको अपने पाससे दूर नहीं कर देगा, तब

तक यह (आत्मा) जन्म मरण और पुनर्जन्मोंके क्रमचक्रोंमें फिरता रहेगा। *

हर्बर्ट वारन।

---

* यह लेख जिन्हें मूल अंग्रेजीमें पढना हो, उन्हें "मेसर्स मेघजी हीरजी एन्ड कम्पनी न० ५६६ पायधूनी–बम्बई" से दो आनेमें मगा लेना चाहिये। उसके साथमें मि० हर्बर्ट वारन, पंडित लालन और मि० जुगमन्दिरलालका एक फोटो भी दिया हुआ है।

सम्पादक।

(७)

जैनधर्म ।

(श्रीयुक्त वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम. ए. लिखित और नाथूराम प्रेमीद्वारा अनुवादित ।)

हमारे देशमें जैनधर्मकी आदि, उत्पत्ति काल, शिक्षा, नेता और उद्देश सम्बन्धी कितने ही भ्रान्तमत प्रचलित है, इसलिये हमलोग जैनियोंसे घृणा करते रहते है। सत्य और तत्त्वानुसन्धान ही सभ्यजातिका चरम (अन्तिम) उद्देश्य है। अतएव मैं इस लेखमें हिन्दू, बौद्ध और जैनशास्त्रोके वचन उध्दृत करके भ्रमसमूह दूर करनेकी चेष्टा करूंगा।

जैन, निरामिषभोजी क्षत्रियोंका धर्म है। " अहिंसा परमो धर्मः " इसकी सारशिक्षा और जड़ है। जैनियोंके मतमें " जीवहिंसा नहीं करना "जीवोंको कष्ट न देना यही श्रेष्ठ धर्म है। साधारण लोग इस जैनधर्मको अति सामान्यही जानते है। कोई २ कहते हैं, वणिक श्रावगी और नास्तिकोंका धर्म है। और कोई समझते हैं, हिन्दू अथवा बौद्धधर्मकी शाखा मात्र है। तथा शंकराचार्यके समय हिन्दूधर्मके पुनरभ्युदय कालमें इसकी उत्पत्ति हुई है। कोई २ कहते है, यह हिन्दू दर्शनशास्त्रकी गवेषणा (शोध) का अन्तिम फल है। आजकल अनेक लोग समझते हैं, महावीर अथवा पार्श्वनाथ इसके प्रथम प्रचारक हैं। अनेक लोगोंकी धारणामे जैनीलोग अत्यन्त अशुचि तथा नग्न-प्रतिमा-पूजक है। मध्यप्रदेश और राजपूतानाके लोग जैनधर्मसे अत्यन्त घृणा करते हैं। तद्देशवासी हिन्दूलोग कहते हैं कि, यदि मत्त हाथी भी तुमपर आक्र-

मण करे, तौभी प्राणरक्षाकेलिये जैनमन्दिरमें प्रवेश मत करो। पाश्चात्य पंडितगणोंकी धारणा भी भ्रमपूर्ण है।

जैनधर्मका प्राचीनत्व।

शंकराचार्यके समयमें जैनधर्मका प्रचार प्रथम आरंभ हुआ था यह कथा सत्य नहीं है। और ऐतिहासिक Lethbridge and Mounsturt Elphinstone कहते है कि, छट्ठी शताब्दीमे इसका प्रथम प्रचार हुआ और बारहवीं शताब्दीसे इसके प्रभावका ऱ्हास होने लगा, यह बात भी सत्य नहीं है। हिन्दू, बौद्ध और जैनशास्त्र, एक वाक्यसे स्वीकार करते है कि, शंकराचार्यने स्वयं उज्जैन नगरीके निकटवर्ती किसी स्थानमें एक जैनपंडितको तर्कमें परास्त किया था। माधव और आनन्दगिरिने शंकरादिग्विजय एवं सदानंद नामक ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया है। शंकराचार्य स्वयं स्वीकार करते हैं, कि जैनधर्म अति प्राचीनकालसे प्रचलित है। वे बादरायणके वेदान्तसूत्रके भाष्यमें कहते हैं कि, द्वितीय अध्यायके द्वितीयपादके ३३--३६ सूत्र जैनधर्मके सबन्धमें लिखे है। शारीरिकमीमांसाके भाष्यकार रामानुजका भी यही मत है अतएव शंकराचार्यके आविर्भाव होनेके समयमें यह जैनधर्म प्रचलित था, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अध्यापक विलसन Wilson, लेसन, Lassen, बार्थ, Barth, वेबर Weber आदि पाश्चात्य-पंडितगणोंने कहा है कि, यह बौद्धधर्मकी शाखा मात्र है। किन्तु किस समय किस कारणसे यह शाखारूपमें परिणत हुआ, इस विषयमें वे कुछ नहीं कहते।

पंडितप्रवर वार्थने अपने " Religions of India " 1892. नामक पुस्तकमे स्वीकार किया है कि, इस विषयमें मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है।

अध्यापक वेवर Weber ने " History of indian Literature" नामक ग्रन्थमें स्वीकार किया है कि, " जैनधर्मसम्बंधी जो कुछ हमारा ज्ञान है वह ब्राह्मणशास्त्रोंसे ज्ञात हुआ है।" ये सब पंडित सरल भावसे अपनी अज्ञता प्रकाश करते है, इसलिये उनके मतकी परीक्षाकी कुछ आवश्यकता नहीं है।

जैनधर्म यह बौद्धधर्मकी शाखा है, यह कथा कोई भी हिन्दूग्रन्थ नहीं कहता। आचार्यगण इन्हें जैन और बौद्ध स्वतत्र २ धर्म कह रहे है। माधव " सर्वदर्शनसंग्रह " में जैनदर्शनको षोडश दर्शनोंसे अन्यतम कहकर निर्देश करते है। वे कहते हैं कि, चौदह शताब्दीसे दक्षिणदेशमें जैन और बौद्धदर्शन प्रचलित था। काश्मीरी पंडित सदानन्दने " अद्वैतब्रह्मसिद्धि " नामक पुस्तकमें जैन और बौद्ध भिन्न २ सम्प्रदाय कहकर उल्लेख किया है। सदानन्द और माधवने बौद्ध धर्मके वैभाषिक, सौत्रान्तिक योगाचार तथा माध्यमिक ये चार उपविभाग किये हैं, जैनसम्प्रदायको इनके अन्तर्निविष्ट नहीं किया है। वरामिहिरने जिन्होंने कि डा० केर्न Dr Kern के मतसे ईस्वी सनकी छट्टी शताद्वीमें जन्मग्रहण किया था, वृहतसंहितामें कहा है, कि नग्न अर्थात् जैन जिनके, तथा शाक्य अर्थात् बौद्ध बुद्धके उपासक हैं—" शाक्यान्सर्वहितस्यशान्त मनसो नग्नान् जिनाना विदु " (६१ अध्याय

१९ श्लोक) । सिद्धान्तशिरोमणि–प्रणेताने जैन और बौद्ध उभय ज्योतिषके शास्त्रोंका भ्रमदर्शन किया है । हनुमन्नाटक भी जैन और बौद्ध भिन्न २ सम्प्रदाय बतलाता है । उसके प्रथम अध्यायके तृतीय श्लोकमें लिखा गया है, कि रामचन्द्रको जैनी लोग अर्हत और बौद्ध बुद्ध कहा करते हैं । वराहामिहिर कहते हैं, जैनियोंके अर्हत्की और बौद्धोंके बुद्धकी मूर्ति विभिन्न प्रणालीसे निमाण करना चाहिये—

पद्माङ्कितकरचरणःप्रसन्नमूर्तिस्सुनीचकेशश्च ।
पद्मासनोपविष्टःपितेव जगतो भवेद्बुद्धः ॥
आजानुलम्बबाहुःश्रीवत्साङ्कःप्रशान्तमूर्तिश्च ।
दिग्वासास्तरुणोरूपवांश्च कार्योऽर्हतो देवः ॥

(बृहत्संहिता ५८ अध्याय ४४–४५)

भागवतमें बुद्धको बौद्धधर्मका तथा दिगम्बर ऋषि ऋषभदेवको जैनधर्मका प्रथम प्रचारक कहा है । जैन और बौद्ध दो स्वतत्र समुदाय शारीरिक मीमांसा एवं महाभारतमें कहे गये है।मीमांसाके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके १८–३२ सूत्रमें बौद्धमतका खण्डन किया गया है । महाभारतमें व्यास भी यही बात कहते हैं । महाभारत, अश्वमेधपर्व, अनुगीत ४६ अध्याय २–१२ श्लोकमें जैनियोंको बौद्ध सम्प्रदायसे स्वतंत्र बतलाया है । द्वितीय श्लोककी टीकामें नीलकंठने " स्याद्वादिनः " का अर्थ सप्तभंगीनयज्ञ कहा है—"सर्वं संशयितमिति स्याद्वादिनः" इति । महाभारतके अनुवादमें मेक्समूलरने स्याद्वादी का अर्थ जैन किया है । Dr. Barth बार्थ भी यह बात कहते हैं–(Religions of India P. 148) । अमरको-

शका भी यही मत है नैयायिकस्तक्षपादः स्याद्वादिक आर्हकः (२ काण्ड ब्रह्मवर्ग ६—७) । ब्राह्मणोंने जहां कहीं जैनधर्मका दोषोल्लेख किया है, वहां उनके आक्रमणका विषय यही 'सप्तभंगीनय हुआ है । शङ्कराचार्य इसी सप्तभगीनयका खंडन करके जैनविजयी हुए थे । बादरायनने भी सप्तभंगीनयकी समालोचना की है—"नैकस्मिन्नसम्भवात्" (वेदान्तसूत्र ३३) । स्वराज्यसिद्धि नामक पुस्तकमें भी इसकी समालोचना देखी जाती है । महाभारत और वेदान्तसूत्र दोनों अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं, इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं है । जब उभय पुस्तकोंमें जैन और बौद्ध विभिन्न सम्प्रदाय कहकर कथित हैं, तब जैन बौद्धधर्मकी शाखा है, यह बात नहीं कही जा सक्ती ।

आदिपर्व्व, द्वितीय अध्याय, २६—२७ श्लोकमें "नग्न क्षपणक" शब्द व्यवहृत हुआ है । नीलकंठ "क्षपणक अर्थात् पाखण्ड भिक्षुक" ऐसा अर्थ करते हैं । नग्न पाखण्ड भिक्षुक दिगम्बर-जैनसन्यासी है ।

अद्वैतब्रह्मसिद्धिका कर्त्ताक्षपणकका अर्थ जैनसन्यासी करता है "क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इति केचित्" (पृष्ट १६७) शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, २३८ अध्याय ६ श्लोक जैनियोंके सप्तभंगीनयका आभास पाया जाता है—

> एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा ।
> कर्मस्थाविषयं ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शिनः ॥

शान्तिपर्व, मोक्षधर्म २६४ अ० ३ श्लोकमें जाजुलि तुलाधारको नास्तिक कहकर भर्त्सना (निंदा) करता है—" नास्तिक्यमपि

शका भी यही मत है नैयायिकस्तक्षपादः स्याद्वादिक आर्हकः (२ काण्ड ब्रह्मवर्ग ६—७)। ब्राह्मणोंने जहां कहीं जैनधर्मका दोषोल्लेख किया है, वहां उनके आक्रमणका विषय यही ' सप्तभंगीनय हुआ है। शङ्कराचार्य इसी सप्तभंगीनयका खंडन करके जैनविजयी हुए थे। बादरायनने भी सप्तभंगीनयकी समालोचना की है—"नैकस्मिन्नसम्भवात्" (वेदान्तसूत्र ३३)। स्वराज्यसिद्धि नामक पुस्तकमें भी इसकी समालोचना देखी जाती है। महाभारत और वेदान्तसूत्र दोनों अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं, इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं है। जब उभय पुस्तकोंमें जैन और बौद्ध विभिन्न सम्प्रदाय कहकर कथित हैं, तब जैन बौद्धधर्मकी शाखा है, यह बात नहीं कही जा सक्ती।

आदिपर्व्व, द्वितीय अध्याय, २६—२७ श्लोकमें "नग्न क्षपणक" शब्द व्यवहृत हुआ है। नीलकंठ "क्षपणक अर्थात् पाखण्ड भिक्षुक" ऐसा अर्थ करते हैं। नग्न पाखण्ड भिक्षुक दिगम्बर-जैनसन्यासी हैं।

अद्वैतब्रह्मसिद्धिका कर्त्ता क्षपणकका अर्थ जैनसन्यासी करता है "क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इति केचित्" (पृष्ट १६७), शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, २३८ अध्याय ६ श्लोक जैनियोंके सप्तभंगीनयका आभास पाया जाता है—

> एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा।
> कर्मस्थाविषयं ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शिनः॥

शान्तिपर्व, मोक्षधर्म २६४ अ० ३ श्लोकमें जाजुलि तुलाधारको नास्तिक कहकर भर्त्सना (निंदा) करता है—" नास्तिक्यमपि

१९ श्लोक) । सिद्धान्तशिरोमणि–प्रणेताने जैन और बौद्ध उभय ज्योतिषके शास्त्रोंका भ्रमदर्शन किया है । हनुमन्नाटक भी जैन और बौद्ध भिन्न २ सम्प्रदाय बतलाता है । उसके प्रथम अध्यायके तृतीय श्लोकमें लिखा गया है, कि रामचन्द्रको जैनी लोग अर्हत और बौद्ध बुद्ध कहा करते हैं । वराहमिहिर कहते हैं, जैनियोंके अर्हत्की और बौद्धोंके बुद्धकी मूर्ति विभिन्न प्रणालीसे निमाण करना चाहिये—

पद्माङ्कितकरचरणःप्रसन्नमूर्तिस्सुनीचकेशश्च ।
पद्मासनोपविष्टःपितेव जगतो भवेद्बुद्धः ॥
आजानुलम्बबाहुःश्रीवत्साङ्कःप्रशान्तमूर्तिश्च ।
दिग्वासास्तरुणोरूपवांश्च कार्योऽर्हतो देवः ॥

(बृहत्संहिता ५८ अध्याय ४४–४५)

भागवतमें बुद्धको बौद्धधर्मका तथा दिगम्बर ऋषि ऋषभदेवको जैनधर्मका प्रथम प्रचारक कहा है । जैन और बौद्ध दो स्वतन्त्र समुदाय शारीरिक मीमासा एवं महाभारतमें कहे गये है।मीमांसाके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके १८–३२ सूत्रमें बौद्धमतका खण्डन किया गया है । महाभारतमें व्यास भी यही बात कहते हैं । महाभारत, अश्वमेधपर्व, अनुगीत ४६ अध्याय २–१२ श्लोकमें जैनियोंको बौद्ध सम्प्रदायसे स्वतंत्र बतलाया है । द्वितीय श्लोककी टीकामें नीलकंठने " स्याद्वादिनः " का अर्थ सप्तभंगीनयज्ञ कहा है––"सर्वं संशयितमिति स्याद्वादिनः" इति । महाभारतके अनुवादमें मेक्समूलरने स्याद्वादी का अर्थ जैन किया है । Dr. Barth बार्थ भी यह बात कहते हैं–(Religions of India P. 148) । अमरको-

शका भी यही मत है नैयायिकस्तक्षपादः स्याद्वादिक आर्हकः (२ काण्ड ब्रह्मवर्ग ६–७)। ब्राह्मणोंने जहां कहीं जैनधर्मका दोषोल्लेख किया है, वहां उनके आक्रमणका विषय यही ' सप्तभंगीनय हुआ है। शङ्कराचार्य इसी सप्तभगीनयका खंडन करके जैनविजयी हुए थे। बादरायनने भी सप्तभंगीनयकी समालोचना की है–"नैकस्मिन्नसम्भवात्" (वेदान्तसूत्र ३३)। स्वराज्यसिद्धि नामक पुस्तकमें भी इसकी समालोचना देखी जाती है। महाभारत और वेदान्तसूत्र दोनों अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं, इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं है। जब उभय पुस्तकोंमें जैन और बौद्ध विभिन्न सम्प्रदाय कहकर कथित है, तब जैन बौद्धधर्मकी शाखा है, यह बात नहीं कही जा सक्ती।

आदिपर्व, द्वितीय अध्याय, २६–२७ श्लोकमें "नग्न क्षपणक" शब्द व्यवहृत हुआ है। नीलकंठ "क्षपणक अर्थात् पाखण्ड भिक्षुक" ऐसा अर्थ करते हैं। नग्न पाखण्ड भिक्षुक दिगम्बर-जैनसन्यासी हैं।

अद्वैतब्रह्मसिद्धिका कर्त्ताक्षपणकका अर्थ जैनसन्यासी करता है "क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इति केचित्" (पृष्ट १६७) शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, २३८ अध्याय ६ श्लोक जैनियोंके सप्तभंगीनयका आभास पाया जाता है–

> एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा।
> कर्मस्थाविषयं ब्रूयु· सत्वस्थाः समदर्शिनः॥

शान्तिपर्व, मोक्षधर्म २६४ अ० ३ श्लोकमें जाजुलि तुलाधारको नास्तिक कहकर भर्त्सना (निंदा) करता है–" नास्तिक्यमपि

जल्पसि "। नीलकंठके मतमें नास्तिकका अर्थ वैदिक--बलिदान विरोधी और निन्दाकारी है--" नास्तिक्यं हिंसात्मकत्वेन यज्ञनिंदा अतएव महाभारतके रचनाकालमें एक नास्तिक सम्प्रदाय वर्तमान था। वह नास्तिक कौन था ? सांख्यमतावलम्बी अथवा जैनसम्प्रदाय। सांख्यदर्शन क्या उस समय प्रचलित हो गया था? और क्या किसी प्राचीन हिन्दु शास्त्रमें सांख्यमतावलम्बीको नास्तिक कहा है ? नहीं, यह नास्तिक जैनसम्प्रदायके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। योगवासिष्ठ रामायण वैराग्यप्रकरण १५ अध्याय ८ श्लोकमें रामचन्द्र जिनेन्द्रके सदृश शान्तप्रकृति होनेकी इच्छा प्रकाश करते है,:-

नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु न च मे मनः।
शांन्तिमासितुमिच्छामि स्वात्मनीवजिनो यथा ॥

रामायण बाल्यकाण्ड १४ सर्ग २२ श्लोकमें राजा दशरथने श्रमणगणोंका अतिथि सत्कार किया, यह बात लिखी है-" तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।" भूषणटीकामें श्रमण शब्दका अर्थ दिगम्बर किया है-"श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसना इति निघण्टुः" शाकटायनके उणादि सूत्रमें जिन शब्द व्यवहृत हुआ है-" इण्सिञजिनीङुष्यविभ्योनक् " सूत्र २५९ पाद ३। सिद्धांतकौमुदीके कर्त्ताने इस सूत्रकी व्याख्यामें " जिनेऽर्हन् " कहा है। जैनियोंके आदि गुरु अर्हत् है, जैनी ऐसा कहते हैं।

अमरकोषमें जिन और बुद्ध समानार्थबोधक हैं। किन्तु मेदिनीकोषमें जिन शब्दका अर्थ (१) अर्हत्, जैनधर्मके आदि प्रचारक तथा (२) बुद्ध, बौद्धधर्मके स्थापक हैं। भारतवर्षमें जब

जैननामक एक सम्प्रदाय विद्यमान है, तब जिन शब्दका दूसरा अर्थ ग्रहण करनेकी कोई आवश्यक्ता नहीं देखी जाती। वृत्तिकारगण भी जिनके अर्थमें अर्हत् कहते हैं, यथा उणादिसूत्र, सिद्धांतकौमुदी। शाकटायनने किस समय उणादि सूत्रकी रचना की थी। यास्ककी निरुक्तमें शाकटायनके नामका उल्लेख है। और पाणिनिके बहुत सयय पहिले निरुक्त बना है, सब लोग यह बात स्वीकार करते है। महाभाष्यप्रणेता पतञ्जलिके कई सौ वर्ष पहिले पाणिनिने जन्म ग्रहण किया था, और युरोपीय पडितोंनें ईस्वी सनसे दोसौ वर्ष पहिले पतञ्जलीका काल निर्णय किया है। अतएव अब निश्चय है, कि शाकटायनका उणादिसूत्र अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है।

अन्यान्य ग्रन्थोंमें भी जिन वा अर्हन्‌को जैन धर्मका प्रथम प्रचारक कहा है। बराहमिहर ने बृहत्सहितामें नग्नजनोंको जिनका शिष्य बतलाया है। राजतरंगिणीके मतमें अशोकने जिनशासन अवलम्बन किया था।

> यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्।
> शुष्कलेत्र वितस्तात्रौ तस्तारस्तूपमण्डले॥
>
> (प्रथमस्तरंगः।)

हनुमन्नाटक, गणेशपुराणादि पुस्तकोंमें अर्हन् शब्दका व्यवहार देखा जाता है। जैनियोंका अर्हत् इसी अर्हन् शब्दसे उत्पन्न हुआ है।

अब देखना चाहिये कि, बौद्धशास्त्र इस विषयमें क्या कहते हैं, बौद्ध ग्रन्थोंमें महावीरको २४ वें तीर्थंकर और बुद्धके समकालीन कहे है। जो छह पंडित बुद्धके जीवनकालमें बौद्धमतका

खंडन करनेकी चेष्टा करते थे, उनमेंसे ये महावीर भी एक थे, यह बात बौद्धलोग कहते हैं। कल्पसूत्र, आचाराङ्गसूत्र, उत्तराध्ययन, सूत्रकृताङ्गादि श्वेताम्बर जैनग्रन्थोंमें महावीरको ज्ञातृपुत्र कहा है। ज्ञातृक एक क्षत्रियवंश है महावीर इसी वंशमें समद्भूत हुए थे। समस्त जैनग्रन्थोंमें इस ज्ञातृक वंशका उल्लेख है। किसी २ ग्रन्थोंमें महावीरको वैशालिक वा वैशली निवासी; वैदेह वा विदेहराजपुत्र एवं काश्यप अर्थात् कश्यपगोत्रजात कहा है, किन्तु अधिकाशग्रन्थोंमें उन्हें नत्तपुत्त (प्राकृत नत्त=संस्कृतज्ञातृ, एवं प्राकृत पुत्त=संस्कृत पुत्र) नामसे अभिहित किया है। बौद्धग्रन्थोंमें ज्ञातृकोंको नादिक वा नातिक नाम प्रदान किया है; जैन निर्ग्रन्थ वा प्राकृत निगंथ शब्दका भी उनमें व्यवहार देखा जाता है; इन प्राकृत निगंथोंको निगंथ नत्तपुत्त और महावीरका शिष्य बतलाया है। दिसव्रत नामक बौद्धग्रन्थमें जैनियोंका कर्मवाद, शतिल-जल-व्यवहार-निषेध आदि विचार आचारोंका उल्लेख है। यह आविष्कार बुल्हर Bulher और जैकोबी Jacobi के बड़े भारी परिश्रमका फल है, प्राचीन भारतका इतिहास शोधनमें इन पंडितोंके हम अनेक विषयमें ऋणी हैं (Sacred Books of the East Vol. XLV.)। महावग्ग, महापरिणिब्बाणसुत्त, अनुगतरणिकाय, सामान्नफलसुत्त, सुमङ्गलविलासनि, ललितविस्तार आदि बौद्धग्रन्थोंमें भी जैन नामका व्यवहार देखा जाता है। मेक्समूलरने अपने Six systems of Philosopy Natural एवं ओल्डनवर्ग Olden Berg ने अपने The Budha religion नामक ग्रन्थमें महावीर वा नत्तपुत्तको बौद्धके समकालीन व्यक्ति प्रदर्षित किया है। अत्यन्त

परिश्रमसे जैकोबी Jacobi ने सिद्ध किया है कि, निर्ग्रन्थ शब्दका अर्थ जैन है, (S. B. E. Vol, XIV) बार्थ Barth साहिबने १८६२ ईस्वी सन्में जैनधर्म बौद्धधर्मकी शाखा मात्र है, यह बात कही अवश्य थी परन्तु १८६९ में जैकोबी Jacobi ने उनका यह भ्रम दूर कर दिया था। ईस्वी सन्से चारसौ वर्ष पहिले जिस जैनधर्मका नामोल्लेखन हुआ है, उसको बौद्धधर्मकी शाखा वा रूपान्तर मात्र कैसे कह सक्ते है?

अब जैनशास्त्र इस विषयमें क्या कहते है? सो देखना चाहिये। श्रीदेवनन्द्याचार्यप्रणीत दर्शनसार (संवत् ७९० में उज्जयनी नगरीमें लिखित) का पाठ करनेसे जाना जाता है कि, पार्श्वनाथके समयमें पिहिताश्रवका शिष्य शास्त्रदर्शी सन्यासी बुद्धकीर्ति सरयूके तीर पलाशनगरमें तपस्या करता था। एकदिन उसने सरयूके सलि-लमें बहते हुए मृतमत्स्य (मरे मच्छ) को देखा। आत्मविहीन मरे हुए जीवके भक्षणमे पाप नहीं हो सकता, ऐसी विवेचना करके उसका भक्षण किया और तपस्या परित्याग करके रक्तवस्त्र धारण-पूर्वक बौद्धधर्मके प्रचारमें कटिबद्ध हो गया. श्वेतांबर साधु स्वामी आत्मारामने अज्ञानतिमिरभास्करमें, दिगम्बर पण्डित शिवचन्द्रने प्रश्नोत्तर दीपिकामें, एवम् तत्कालीन समस्त जैनपण्डितोंने दर्शनसारका पूर्वोल्लिखित गाथा उदधृत करके यही सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि बुद्ध पहिले एक जैनसन्यासी था। उसने प्रवृत्ति–दमनमें अस-मर्थ होकर आमिष भोजनकी भी विधि बतलाई। और रक्तवस्त्र धारणकरके नूतन धर्म प्रचारका व्रती हुआ।

अतएव अब दिखाई देता है कि, जैनधर्म बौद्धधर्मके शाखा है, यह बात हिन्दूशास्त्र नहीं कहते। बादरायन बुद्धके समकालीन व्यक्ति थे, वे भी ऐसा नहीं कहते। बौद्धशास्त्रोंके पठनसे जाना जाता है कि, जैन और बौद्धधर्मका प्रचार एक समयमें आरंभ हुआ है। कोई २ ग्रन्थोंके मतसे जैनधर्म बौद्धधर्मके पूर्व भी प्रचारमें था। बुद्ध पहिले एक जैनसन्यासी था, जो पिहिताश्रवका शिष्य था, जैनशास्त्र यही बात कहते हैं।

Hunter हण्टर आदि यूरोपीय ऐतिहासिक लेखक कहते हैं, बुद्ध महावीरका शिष्य था, परन्तु जैनग्रन्थ इस बातको अस्वीकार करते है। कोलब्रुक Colebrooke, स्टीवनसन Stevenson मेजर डिलामेन Major Delamaine, डा० हेमिल्टन Dr. Hamilton आदि पण्डित गोतमबुद्ध तथा जैनगोतम इन्द्रभूतिको एक ही व्यक्ति समझते है। परन्तु इन्द्रभूति महावीरके प्रधान गणधर थे, गोतमबुद्ध उनका शिष्य नहीं था। बौद्ध और जैन एकवाक्यसे स्वीकार करते हैं कि, बुद्ध और महावीर समकालीन व्यक्ति थे। महावीर, बौद्धमतके खण्डन करनेवाले पण्डितोंमें सबसे मुख्य थे। पूर्वमें कहा है कि, बुद्धकीर्तिने पार्श्वनाथके समयमें जन्मग्रहण किया था। स्वामी आतमाराम पार्श्वनाथसे लेकर कवलागच्छकी पट्टावली इस प्रकार अङ्कित करते है—

श्रीपार्श्वनाथ।
श्रीहरिदत्त।
श्रीस्वामी प्रभासूर्य।
श्रीशुभदत्त गणधर।
श्रीआर्यसमुद्र।
श्रीकेशीस्वामी।

वे कहते है, पिहिताश्रव प्रभासूर्यका शिष्य था उत्तराध्ययनसूत्र

तथा अन्यान्य जैनग्रन्थोंके मतसे केशीस्वामी पार्श्वनाथके पक्षावलम्बी और महावीरके समकालीन व्यक्ति थे, अतएव पिहिताश्रवका शिष्य बुद्धकीर्ति भी महावीरका समकालीन स्पष्ट होता है। धर्मपरीक्षा (वि० संवत् १०७० में लिखित) के प्रणेता अमितगत्याचार्य कहते है कि, पार्श्वनाथके शिष्य मोग्गलायनने महावीरके साथ कलह करके बौद्धधर्मका प्रचार किया। उसने कालदोषसे शुद्धोद्धनके पुत्र बुद्धको परमात्मा समझके स्वप्रचारित धर्मको बौद्धके नामसे अभिहित किया।

रुष्टः श्रीवीरनाथस्य तपस्वी मौडिलायनः।
शिष्यः श्रीपार्श्वनाथस्य विदधे बुद्धदर्शनम् ॥
शुद्धोद्धनसुतं बुद्धं परमात्मानमब्रवीत।
प्राणिनः कुर्वते किं न कोपवैरिपराजितः॥ ६९ ॥

(धर्मपरीक्षा, अध्याय १९।)

इस श्लोकमें शिष्यका अर्थ शिष्यपराशिष्य है।

महावग्ग पुस्तकके पाठ (PP 141—150 S.B Eol. XIII) से जाना जाता है कि, संगम नामक परिव्राजकके मोग्गलायन और परिपुत्त नामके दो ब्राह्मण शिष्य थे। और धर्मपरीक्षाके मतसे मोग्गलायन पार्श्वनाथके पराशिष्य थे, अतएव संगय जैन था। मोग्गलायन महावीरका शत्रु था, और उसने वुद्धको गुरु कहकर स्वीकार किया था, अतएव महावीर तथा वुद्ध समकालीन थे। किन्तु धर्मपरीक्षा, महावग्ग एवं श्रेणिकचरित्र ग्रन्थके मतसे महावीरके अर्हत्पदप्राप्त होनेके पूर्व बुद्ध अपने प्रचारकार्यमें तत्पर था। धर्मपरीक्षाके उपर्युद्धृत श्लोकके दो अर्थ बोध होते हैं। मोग्गलायन ही

बौद्धधर्मका स्थापक था, यह सत्य नहीं है, किन्तु उक्त श्लोक-द्वयका अर्थ यह है कि, उसने शिष्य होकर बुद्धके प्रचारकार्यमें विशेष सहायता दी थी। बौद्ध शास्त्रोंका भी यही मत है.

कोलब्रुक Colebrooke बुल्हर Buhler और जैकोबी Jacobi ने जैन एवं हिन्दुधर्मका सादृश्य दिखलानेमें कहा है कि, पार्श्वनाथ जैनियोंके आदिगुरू और हिन्दूधर्मका रूपान्तर मात्र है। जैन और बौद्धधर्मका सादृश्य दिखलानेमें लेस्सन Lassen, वेबर Webber, बार्थ Barth और विल्सन Wilson भी इसे बौद्धधर्मका रूपान्तर समझे है। किन्तु अब ये सब ही कहते हैं कि, बौद्ध शास्त्रोंमें जैन-धर्मको निर्ग्रन्थोका धर्म बतलाया है, और यही निर्ग्रन्थधर्म बौद्धधर्मके बहुत पहिले प्रचलित था।

२ जैनधर्म हिन्दूधर्मका रूपान्तर नहीं है।

जैनी कहते है कि जिस प्रकार हिन्दूधर्म देश, काल और प्रकृतिगत है, जैनधर्म भी तद्रूप है; एक दूसरेकी शाखा वा रूपान्तर नहीं है। प्राचीन भारतका इतिहास अज्ञात न होनेपर भी अल्पमात्र जाना गया है। लोगोका विश्वास है कि, प्राचीनभारतमें हिन्दूधर्म एवं अनार्योंकी भूतप्रेत-उपासनाके अतिरिक्त अन्य कोई भी धर्म प्रचलित नहीं था। और हम हिन्दू धर्मको वैदिकधर्म ही समझते हैं। परन्तु पूर्वमें वैदिक बलिदानको छोड़के अन्य प्रकारके धर्मानुष्ठान थे, इसमें सन्देह नहीं है। उससमय एक सम्प्रदाय शिक्षा देता था, -"अग्निषोमीयं पशुं हिंस्यात्" अर्थात् जिन सम्पूर्ण जीवोंके देवता अग्नि और सोम हैं, उन्हे वध करना चाहिये। और

दूसरा सम्प्रदाय शिक्षा देता था, " मा हन्यात्सर्वं भूतानि " अर्थात् किसी भी जीवका वध मत करो। काव्हेल Cowell एवं ग्रूप Groop सर्वदर्शन-संग्रहके १०–११ पृष्ठमें और भी एक सम्प्रदायका उल्लेख करते है। वह उपदेश देता था, " स्वर्ग नहीं है, मोक्ष नहीं है, परलोकमें कोई भी आत्मा नहीं है। चार जाति कर्मोंका कोई फल नहीं है। अज्ञ और कापुरुष लोगोंकी जीविका निर्वाहके सुभीतेकेलिये अग्निहोत्र, तीनवेद एवं सन्यासधर्म की सृष्टि हुई है। प्रकृति स्वयं अभावमोचनका उपाय हम लोगोंको बतलाती है, कि यह जीविकानिर्वाहकी प्रथा प्रकृति दत्त है। ज्योतिष्टोमयज्ञकी प्रथानुसार हतजीव यदि स्वर्गगामी होता है, तो उपासक अपने पिताको बलिप्रदान क्यों नहीं करता ? श्राद्धसे यदि मृतव्यक्तिकी तुष्टि सम्पादित होती है, तो यात्रीगण पाथेय (मार्ग भोजन) लेकर दूरदेशकी यात्रा क्यों करते है ? भूतलमें श्राद्धक्रिया सम्पादन करनेसे यदि स्वर्गस्थ व्यक्तिको आहारप्रदान किया जा सकता है, तो छादोपरि (छतके ऊपर) बैठे हुए व्यक्तिको नीचेसे खाद्य प्रदान क्यों नहीं किया जाता ? जितने दिन जीवन है, उतने दिन सुखभोग करो, ऋण ले लेकर घृताहार करो। यह शरीर एकबार भस्म परिणत होनेपर पुनः प्रत्यागमन नहीं कर सकता। आत्मा देहवियुक्त होकर यदि परलोक गमन करता है, तो स्नेह और मायाके वशीभूत होकर फिर कुटुम्बके निकट क्यों नहीं लौटके आ जाता ? अतएव सिद्ध है कि, ब्राह्मणोंने अपने लाभकेलिये श्राद्धकी प्रथा प्रचलित की है, इसका अन्य कोई फल नहीं है, इत्यादि।" अधिक क्या कहा जावे, यह शिक्षा चार्वाक्सम्प्रदायकी है।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र योगसूत्रकी प्रस्तावनामें कहते हैं कि; सामवेदमें एक बलिदानविरोधी यतिका उल्लेख है। उसका समस्त ऐश्वर्य भृगुको दान कर दिया गया था क्योंकि एतरेय ब्राह्मणके मतमें बलिदान विरोधी यतिको शृगालके सम्मुख प्रक्षिप्त करना चाहिये। मगध वा कीकटमें यज्ञदानादिका विरोधी एक सम्प्रदाय था, (ऋग्वेद, ३ अष्टक ३ अध्याय, २१ वर्ग १४ ऋचा देखो)। हम लगोंके सब ही पूर्वपुरुषगण बादरायणके दर्शनका विश्वास करते थे, यह बात कोई नहीं कह सकता। वे सबके सब किसी समय भी वेदान्तकथित ब्रह्मके उपासक नही थे। कपिलके इस न्यायका अनेक लोग विश्वास करते थे "ईश्वरासिद्धे"। भार्गव नामक ऋषि कहते है, "इन्द्र नहीं है, किसीने कभी उसको देखा नहीं है, जिसके अस्तित्त्वमें ही सन्देह है, उसकी उपासना किस प्रकार करें ? यह केवल लोकवाद मात्र है" (ऋग्वेद, ८ मंडल, १० अध्याय ८९ सूक्त, ३ ऋचा देखो)। चौथी ऋचामें इन्द्र अपना अस्तित्त्व सिद्ध करता है, एव अपने वैरियोंको नाश करनेका भय प्रदर्शित करता है। और दूसरे पक्षमें गृत्समद ऋषि कहते है "अनेक लोग इन्द्रके अस्तित्त्वमें अविश्वास करते हैं, किन्तु वास्तवमें इन्द्र है" (ऋग्वेद, २ मंडल, २ अध्याय, १२ सूक्त ५ ऋचा देखो)। जैनीलोग परलोकमें विश्वास करते हैं, और प्राचीन भारतमें कोई लोग तो विश्वास करते थे, और कोई अविश्वास बार्थ सा० Barth कहते हैं, ब्राह्मण ग्रन्थमें कहीं २ परलोक है कि नहीं, इस प्रश्नका उल्लेख मिलता ह। ऋग्वेद, ६ अष्टक,

४ अध्याय, ३२ वर्ग, १० ऋचामें केङ्कनटोंका उल्लेख किया गया है। उनके सम्बन्धमें कहा हे कि, ये सूदग्राही लोग जगत्में सूर्यके आलोकका दर्शन करते है परन्तु मृत्युके पश्चात् घोर अंधकारयुक्त लोकमें गमन करते हैं। ये लोग नास्तिक थे, क्योंकि परलोक किसीने नही देखा, ऐसा कहकर उसपर ये विश्वास नहीं करते थे।

प्राचीन भारतमें वैदिक बलिप्रदानके अतिरिक्त जो अन्य प्रकारसे उपासना और आराधना की जाती थी, उसके सैकड़ों प्रमाण हिन्दू ग्रन्थोंसे ही दिये जा सकते है। परन्तु स्थानाभावसे कुछ थोड़ेसे शास्त्रीय पदोंका उल्लेख किया जाता है। यह कथा है कि, अधिकाश लोग विश्वास करते थे " स्वर्गकामो यजेत "--अर्थात् " स्वर्गकी इच्छा करनेवाला बलिप्रदान करै "। पातञ्जलिके योग-सूत्रसे भी कितनेक पद उद्धृत किये जाते है।

" अहिंसासत्यमस्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहायमाः "

द्वितीयपद, ३० सूत्र। " एते जातिदेशकालसमयावच्छिन्नाः सार्वभौममहाव्रतम् "। ३१ सूत्र (राजेन्द्रलाल मित्रका अनुवाद पृष्ठ ६३ देखो)। " अहिंसाप्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग. ३५ " सत्यप्रतिष्ठाया क्रियाः फलाश्रयत्वं " ३६ सूत्र। तद्वचनात् यस्य कस्यचित् क्रियामकुर्वतोऽपि क्रियाफलं भवति " इत्यादि। योगदर्शनके मतसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि कर्मफल स्वर्गकी इच्छा करनेवालेके उपकारी है।

सांख्यदर्शन—

" अविशेषश्चोभयोः " ६ सूत्र; अर्थात् दोनोंमें कोई प्रभेद नहीं है (दुःख और यन्त्रणा दूर करनेवाले दृश्यमान् और वैदिक उपायोंमें कोई भेद नहीं है)। क्यों ? इसलिये कि, वैदिक बलिदान एक निष्ठुर प्रथा मात्र है। यज्ञमें पशुहनन करनेसे कर्मबंध होता है, पुरुषको तज्जन्यलाभ कोई नहीं होता। " मा हिंस्यात्सर्वभूतानि " " अग्निषोमीयं पशुमालभेत् " " दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः " सांख्यकारिका. २। गौड़पद सांख्यकारिकाके भाष्यमें निम्न लिखित श्लोक उद्धृत करके कपिलके मतका समर्थन करता है,—

तातैतद्बहुशोभ्यस्तं जन्मजन्मान्तरेष्वापि।
त्रयीधर्ममधर्माढ्यं न सम्यक्प्रतिभाति मे॥

अर्थात् " हे पिता ! वर्तमान् और गतजन्ममें मैने वैदिक धर्मका अभ्यास किया है परंतु मै इस धर्मका पक्षपाती नहीं हूं, क्योंकि यह अधर्मपूर्ण है। " कपिलसूत्रका भाष्यकार विज्ञानभिक्षु, मार्कंडेयपुराणसे निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करके, कपिलमतका समर्थन करता है—

तस्माद्यास्याम्यहं तात दृष्ट्वेमं दुःखसन्निधिम्
त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किंपाकफलसन्निभम्॥

अर्थात् " हे तात ! वैदिकधर्मको सब प्रकार अधर्म और निष्ठुरतापूर्ण देखके मै किस प्रकार इसका अनुकरण करूं ? वैदिकधर्म किंपाकफलके सदृश बाह्य सौन्दर्य किन्तु भीतर हलाहलपूर्ण है। " महाभारत और चार्व्वाक्दर्शनका मत पूर्वमें ही उल्लेख

किया गया है। अश्वमेधपर्व, अनुगीत ४६, अध्याय २, श्लोक १२ की नलिकण्ठकृत टीका पढ़िये।

जैनग्रन्थोंमें प्राचीन भारतका इतिवृत्त बहुत पाया जाता है। प्राचीन कालमें दिगम्बर ऋषि ऋषभदेव "अहिंसा परमो धर्मः" यह शिक्षा देते थे। उनकी शिक्षाने देव, मनुष्य और इतर प्राणियोंके अनेक उपकार साधन किये हैं। उस समयमें ३६३ पुरुष पाषण्ड धर्म-प्रचारक थे, चार्वाकके नेता शुक्र वा बृहस्पति उन्हींमेंसे एक थे। द्वापरयुगके शेषकालमें भारतमें धर्मविप्लव हुआ था, इसमें सन्देह नहीं है उस समय ३६३ जन भिन्न २ मतावलम्बियोंने धर्मप्रचारक सत्यानुसन्धीको व्यतिव्यस्त कर रक्खा था। मोक्षमूलर आदि यूरोपीय पण्डितगणोंकी भी ऐसी ही धारणा है। सन् १८९९, ७६ वर्षकी उमरमें मोक्षमूलर लिखते हैं—

It would be a mistake to imagine that there was a continuing developement into the various meanings assumed by or assigned to such pregnant terms as Prajapati Brahman or even Atman. It is much more in accordance with what we learn from the Brahmans and Upanishads of the intellectual life of India to admit *infinite number of intellectual centres* of thought scattered all over the country in which either the one or the other view found influential advocates. The Sutras which we possess of six systems of Philosophy, each distinct from the other; can not possibly claim to represent the very first attempts at a systemati treatment, they are rather the last summing up of what had been growing up during *many generations of isolated thinkers etc.*"

अतएव प्राचीन भारतमें नाना धर्म और नाना दर्शन प्रचलित थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जब ३६३ धर्म प्रचारकोंका उल्लेख देखते हैं, तब जो कहते हैं कि, प्राचीन भारतमें वैदिकधर्म और भूतप्रेतकी पूजाके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म प्रचलित नहीं था, उन लोगोंसे शान्ति धारणके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जाता। जैनधर्म हिन्दूधर्मसे सर्वथा स्वतंत्र है, उसकी शाखा वा रूपान्तर नहीं है। विशेषतः प्राचीन भारतमें किसी धर्मान्तरसे कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचारकी प्रथाही नहीं थी। मोक्षमूलरका भी यही मत है। वे कहते हैं—

" If we right in the discription we have given of the unrestramed and abundant growth of Philosophical ideas in ancient India, *the idea of borrowing so natural to us, seems altogether cut of place in ancient India.* A wild mass of guesses at truth was *floating* in the air......Hence we have as little right to maintain that Buddha borrowed from Kapila as that Kapila brrowed from Buddha &c. "

मोक्षमूलरने आजीवन वैदिक और बौद्धसाहित्यकी चर्चा की है, ७६ वर्षकी वयमें उन्होंने यह बात कही थी। आक्षेपका विषय है, कि समयाभावसे वे जैनसाहित्यका कोई उपकार साधन नहीं कर सके।

३ पार्श्वनाथ जैनधर्मके प्रथम प्रचारक नहीं थे।

लोगोंका यह भ्रमविश्वास है कि, पार्श्वनाथ जैनधर्मके स्थापक

थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणोंका अभाव नहीं है।

बौद्धशास्त्रोंमें जैनधर्मका आदिप्रवर्तक कौन था, इसका उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह है कि, अन्तिम तीर्थंकर महावीरके समय बौद्धधर्मके प्रचारका आरम्भ हुआ था। बौद्धलोग महावीरको निर्ग्रन्थोंके नायक मात्र कहते हैं। डा० जैकोबी Dr gacobi इस मतके समर्थक हैं।

जैन शास्त्रोंके मतसे ऋषभदेवके संसारत्याग और संन्यासधर्मके ग्रहण समयमें चार हजार राजा उनके अनुगामी हुए थे। किन्तु वे ऋषभदेवके कठोर-नियम-पालनमें असमर्थ होकर अन्यान्य,सम्प्रदाय-भोगी हो गये। इन राजाओंमेंसे ही ३६३ जन पाषण्डधर्मप्रचारक हुए। चार्वाक दर्शनके नेता शुक्र वा बृहस्पति उनमें प्रधान थे। जैनमतके प्रथम प्रचारक ऋषभदेव हैं। ३६३ जनोंके धर्म प्रचारसे भारतवर्षकी तदानीन्तन बुद्धि-वृत्तिकी प्रखरता और कार्यकरिता की सहज ही उपलब्धि की जा सकती है।

हिन्दु और जैनशास्त्रोंका इस विषयमें एक मत है। भागवतके पांचवे स्कन्दके २—६ आध्यायमें ऋषभदेवका विषय वर्णित हुआ है। भागवतके मतसे स्वयंभूमनु चौदह मनुओंमें प्रथम था; जब ब्रह्माने देखा कि, जगत्में लोकवृद्धि नहीं होती, तब उन्होंने स्वयंभू मनु और उसकी सत्यरूपाको बनाया स्वयंभूका पुत्र प्रियाव्रतार, पौत्र अग्निध्र और प्रपौत्र नाभि हुआ।

नाभिने मरुदेवीसे विवाह किया, ऋषभ उनका पुत्र हुआ। भागवतमें ऋषभको दिगम्बर और जैनसम्प्रदायका आदि कहा है। ऋषभके जन्मकालमें, जगत्की बाल्यावस्था थी, वे स्वयभूके पंचम पुरुष थे। एक मन्वन्तरमें २८ कृतयुग होते हैं, ऋषभने प्रथम कृतयुगके शेषभागमें जन्मग्रहण किया था। भागवत, ६ अध्याय, ९–११ श्लोकमें लिखा है कि, कोंक, बेंक और कुटकका राजा अर्हत्, ऋषभके चरित्र (धर्मनियम) श्रवण करके कलियुगमें ब्राह्मणविद्वेषी एक नवीनधर्मके प्रचारका मानस करेगा। किन्तु हमने अन्य किसी भी ग्रन्थमें ऐसा किसी राजाका नाम नहीं पाया। अर्हत्को अन्य कोई भी ग्रन्थकार कोङ्कबेक और कुटकका राजा नहीं कहता। अर्हत्का अर्थ प्रशसार्ह (यदि अर्हधातुसे किया जावे) वा शत्रुनाशक (यदि अरिहन्त ऐसी व्युत्पत्ति होवे) है। शिवपुराणमें अर्हत् शब्दका व्यवहार हुआ है, किन्तु अर्हत नामसे कोई राजाका नाम नहीं है। ऋषभको अर्हत् कहते हैं, क्योंकि वे प्रशंसार्ह और कर्मरूपशत्रुके हन्ता थे। अर्हत्राजा कलियुगमें जैनधर्मका प्रचारक होता तो, वाचस्पत्यने ऋषभको जिनदेव एवं शब्दार्थ-चिन्तामणिने, आदि-जिनदेव कभी नहीं कहा होता। किसी२ उपनिषदमें भी ऋषभको अर्हत् कहा है। भागवतके रचियताने क्यों यह बात कही, सो कहा नहीं जा सकता। अर्हत् राजाने ऋषभके चारित्रमें मुग्ध होकर जैनधर्मका प्रचार किया, यह बात सत्य हो, तो भी ऋषभके चरित्रको ही जैनधर्मका बीज स्वीकार करना पड़ेगा। महाभारतके सुविख्यात टीकाकार, शान्तिपर्व्व, मोक्ष

धर्म, २६३ अध्याय, २० श्लोककी टीकामें कहते है, अर्हत् अर्थात् जैन ऋषभके चरित्रमें मुग्ध हो गये थे—पुराणमें " ऋषभादीनां महायोगिनामाचारं दृष्ट्वा अर्हतादयो मोहिताः" । इत्युक्तम् । उक्त अध्यायमें जाजलि और तुलाधारका कथोपकथन है । तुलाधार अहिंसाका समर्थन और जाजलि उसका खंडन करता है। इस प्रकार अव जाना जाता है कि, हिन्दुशास्त्रोंके मतसे ऋषभ ही जैनधर्मके प्रथम प्रचारक थे । डा० फुहरर Fuhrer ने जो मथुराके शिलाले-खोंसे समस्त इतिवृत्तका खोज किया है, उसके पढ़नेसे जाना जाता है कि, पूर्व कालमें जैनी ऋषभदेवकी मूर्तियां बनाते थे । इस विष-यका एफी ग्रेफियाइडिका Epigraphia Indica, Vols I, and 11 नामक ग्रन्थ अनुवाद सहित मुद्रित हुआ है । ये शिलालेख वें अन्ततः दो हजार वर्ष पहिले कनिष्क, हुवष्क, वासुदेवादि राजा-ओंके राजत्वकालमे खोदे गये है स्थानाभावके कारण इस समय वे सव उद्धृत नहीं किये जा सकें । Vol. I, P. 389, No VIII लिखा है, " May the divine (and) glorious Rishabha be pleased", Vol. I P. 389, N. XIV. At the request of his female people " the venerable Sama,' (was declicated an image of Rishabha)" Vol. II; P. 206-207, No. XVIII. ' Adoration to divine Rishabha." इत्यादि अतएव देखा जाता है कि, दो हजार वर्ष पहिले ऋषभदेव प्रथम जैनतीर्थंकर कहकर स्वीकार किये गयेहैं । महावीरका मोक्षकाल ईस्वी सन्से ५२६ वर्ष पहिले, और पार्श्वनाथका ७७६ वर्ष पहिले निश्चित है । यदि ये जैनधर्मके प्रथम प्रचारक होते तो दो हजार वर्ष पहिलेके लोग ऋषभदेवकी मूर्तिकी पूजा नहीं करते ।

४ जैनदर्शन ।

जैनदर्शनके अनुसार जगत् अनन्तकालसे स्थित है । जगत्का सृष्टा कोई नहीं है । लोक और अलोक इन दो भागोंमें जगत विभक्त है । फिर लोकके तीन उपविभाग है—ऊर्ध्वलोक वा स्वर्ग, मध्यलोक वा पृथ्वी और पाताललोक वा नरक । जगत्में जीव अजीव दो द्रव्य हैं । जीव छह प्रकार;—पृथ्वीजीव, अग्निजीव, वायुजीव, वारिजीव, वनस्पति एव जगमजीव वा त्रस । जंगमजीव चार श्रेणियोंमें विभक्त है; यथा द्वि–इन्द्रिय, त्रि–इन्द्रिय चत्वारिन्द्रिय एवं पञ्चेन्द्रिय । पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकार, सैनी बा मनोविशिष्ट, और असैनी वा मनोविवर्जित पंचेद्रिय जीवोंमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, एव केवल मनुष्य ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है । सर्व्वोच्च स्वर्गवासी जीव भी मोक्षप्राप्त नहीं हो सकता. जिन वा अर्हत् होनेको मानवरूप जन्मग्रहण की आवश्यकता है । अजीव पांच प्रकार, यथा–पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल एवं आकाश ।

जीव (आत्मा) और पुद्गलका सम्मिलन प्राणीकी उत्पत्ति है आत्मा और पुद्गलके ऐसे अनन्त सम्मिलन हैं । कर्म पदार्थ मात्र है । कर्मबन्धनसे आबद्ध आत्माको जन्मसे जन्मान्तर ग्रहण करना पड़ता है । नूतन कर्मोंके आगमका नाम आस्रव । तद्वारा आत्माके वन्धनका नाम बन्ध । नवकर्मोंके आगमनकी प्रतिबन्धकता संवर । अतीतकर्मफलोंसे अव्याहति (छुटकारा) निर्जरा, और मोक्ष शेषांक ।

जैनी लोग सप्ततत्त्वोंमें विश्वास करते है । पाप और पुण्ययुक्त

सप्ततत्वोंको नव पदार्थ कहते हैं। जीव वा आत्मा, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनन्त, एवं असंख्य-गुण-विशिष्ट है। कर्म और पदार्थ,—कर्म आत्माको आबद्ध एवं समस्त गुणोंको आवृत करते हैं। कर्मबद्ध आत्माके आत्मविस्मृति होती है। वह अपना स्वरूप भूलके अपनेको अन्य कुछ ही जानता है। इसी आत्माका नाम बहिरात्मा है। कर्म आठ प्रकारके है। ज्ञानावर्णीकर्म ज्ञानको आच्छादित करता है, दर्शनावर्णी दर्शनको इत्यादि। आयु कर्म इन आठ कर्मोंमें मुख्य है। जीवन और मृत्यु इन दोमेंसे एक आयुकर्मका अवसान (अन्त) और दूसरा आयुकर्मका प्रारंभ मात्र है। किसी प्राणीका एक आयुकर्म शेष हुआ कि, आत्मा देह त्याग करता है, और इसका ही नाम मृत्यु है। देहविमुक्त आत्माके देहान्तरमें प्रवेशका नाम जन्म हैं इस प्रकार कर्माधीन आत्मा देहसे देहान्तरका आश्रय कर सकता है. अन्तमें आत्माको एक ऐसी अवस्था उपस्थित होती हैं कि जिसमें यह कर्मविमुक्त होता है, और अपने लुप्त तथा कर्माच्छादित गुणोंको प्राप्त होकर जिन वा अर्हत्स्वरूपमें मोक्षप्राप्त होता है। मोक्षका अनन्तसुख और शान्ति आत्मा स्वयं भोगता है।

देश, काल, पात्रभेदमें नाना महामुनियोंने "हम कौन है?" "हम क्या है?" "हमकहांसे आये है एवं कहां जावेंगे? "समस्त पदार्थोंका अन्त क्या है?" आदि प्रश्नोंके नानाप्रकार उत्तरप्रदान किये है? इस सकल प्रश्नोंकी मीमांसाका नाम ही दर्शन है। और इसी हेतुसे नानाप्रकार धर्मभी प्रचलित है। प्राचीन जैन तीर्थङ्करोंने भी इन सम्पूर्ण प्रश्नोंके उत्तरप्रदानकी चेष्टा की है। "हम कौन हैं?

" जगत् क्या है? " इसके उत्तरमें उन्होंने कहा है आत्मा, कर्म और जगत् अनन्त है; इसका स्रष्टा वा संहारक कोई नहीं है। आत्मा अपने कर्मफलका भोग करता है। हमारा अदृष्ट हमारे ऊपर ही निर्भर है। इसीलिये जैनीलोग ईश्वरकी उपासना और आराधना अनावश्यक समझते है। उनकी विवेचनासे कर्मफलही मोक्षका हेतु और स्वर्ग है। वे ईश्वरको कर्मानुयायी पुरस्कार और शान्तिदाता स्वीकार नहीं करते। ईश्वरकी यह क्षमता (सामर्थ्य) भी नहीं है। आराधना और उपासनासे तुष्ट ईश्वरको वे इतर प्रकृतिका मनुष्य समझते है। जैनशास्त्रोंके अनुसार मानवात्मा और कल्पित ईश्वर एक ही व्यक्ति है. निर्वाणप्राप्त आत्मा ही ईश्वर है, यही आत्मा सर्वज्ञ, अनंत और अन्यान्य बहुगुणविशिष्ट है। किन्तु जैनी अपनेको नास्तिक स्वीकार नहीं करते। वे कहते है कि, मानवात्मासे ईश्वरका परिचय व्याप्त हो जाता है; ईश्वरके सम्बन्धमें उनकी धारणा अन्यान्य सम्प्रदायोंसे विभिन्न है । यही जैनदर्शन है माधवके सर्वदर्शनसंग्रहमें जैनदर्शन की आलोचना की गये है

५ जैनधर्मकी शिक्षा।

जविनके पूर्वोक्त रहस्यभेदका नाम सम्यग्दर्शन, रहस्यज्ञानका नाम सम्यग्ज्ञान और ज्ञानानुयायी आचरणका नाम सम्यक्चारित्र है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रको रत्नत्रय कहते है।

सम्यग्दर्शन और ज्ञानके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु सम्यक्चारित्र क्या है, अर्थात् किस प्रकारके चारित्र होनेसे जैनी मोक्षलाभ करते है? यह कहना आवश्यक है। चरित्र

दो प्रकारका है, श्रावकचारित्र और मुनिचारित्र। सरावगी नामका कोई शब्द नहीं है। मूर्खलोग श्रावक शब्दका अपभ्रंश श्राभ्या, अथवा सरावगी करके बोलते हैं। श्रावक दो प्रकारके है, अव्रती-श्रावक (जो व्रत ग्रहण करके अपने चरित्रकी रक्षा नहीं कर सकते) और व्रतीश्रावक (जो व्रत धारण करके अपने चारित्रकी संरक्षा करते हैं) । ग्यारह प्रतिमाओंकी समष्टि ही व्रतीश्रावकका चरित्र है ये ग्यारह प्रतिमा क्रमोन्नत अर्थात् धीरे २ चढ़ती हुई हैं। पहिलीसे पांचवीं प्रतिमा पालनेवाला जघन्य श्रावक छठीसे आठवीं प्रतिमा पालनेवाला मध्यमश्रावक और नवमींसे ग्यारहवीं प्रतिमा पालनेवाला उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है । किस श्रेणीके श्रावकको कौन प्रतिज्ञा करनी चाहिये, यह नीचे लिखा जाता है।

१. **दर्शनप्रतिमा**— मै सत्यदेव, गुरु और धर्ममें विश्वास करूंगा। मैं अष्टमूलगुण पालन करूंगा, अर्थात् मै त्रिमकार अथवा मद्य, मांस, और मधुका स्पर्श भी नहीं करूंगा। पंच उदम्बर अथवा पीपल (अश्वथ) बड़ (वट), ऊमर, कठूमर और पाकर फल ग्रहण नहीं करूगा। मैं द्यूतक्रीड़ा (जूआ), मासभोजन, मद्यपान, वेश्यागमन, चौर्य्य (चोरी), मृगया (शिकार) और परस्त्रीगमन इन सप्तव्यसनोंका परिहार करूंगा। मैं प्रत्यह (दर रोज) मन्दिरको जाऊंगा।

२. **व्रतप्रतिमा**— मैं नीचे लिखे हुए बारह व्रतोंका पालन करूंगा; (क) मै जीवहिंसा नहीं करूंगा और जीवोंको कष्ट नहीं दूंगा; (ख) मैं परस्त्रीगमन नहीं करूंगा; (ग) मैं चोरी नहीं

करूंगा; (घ) मै अपनी सम्पत्तिका परिमाण नियत करूंगा; (ङ) मै मिथ्या भाषण नहीं करूंगा; (च) मै अपनी गन्तव्य (जाने योग्य) दशाका परिमाण नियत करूंगा; (छ) मै अनर्थ दड नहीं करूगा, एवं उद्देश्यविहीन (निःप्रयोजन) कार्य नहीं करूंगा , अथवा ऐसा कार्य नहीं करूगा जिससे अन्य कोई दंडका पात्र होवे; (ज) मै प्रात्यहिक भोगोपभोगोंका नियत परिमाण रक्खूंगा; (झ) मै प्रतिदिन कहां तथा कितनी दूरतक जाऊंगा; यह स्थिर करूंगा, (ञ) मै सम्यक्त्व पालन करूंगा; (ट) अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास रक्षा करूंगा; (ठ) मै चार प्रकारका दान करूंगा और समाधिमरण पूवक मरूंगा (मृत्युकालमें विषय, भोग, लालसा और संसारकी मायाके त्यागको समाधि मरण कहते है) ।

३. **सामायिक प्रतिमा**—मै किसी निर्दिष्ट समयके लिये प्रतिदिन तीनबार सामायिक करूंगा ।

४. **प्रोषधोपवास प्रतिमा**—मैं प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको सोलह प्रहरपर्यन्त उपवासी रहूंगा ।

५. **सचित्त-त्याग-प्रतिमा**—मै हरित (Creen) फलमूलका आहार नहीं करूंगा ।

६. **निशिभोजन-त्याग-प्रतिमा**—मै रात्रिकालमें चार प्रकारके आहारका ग्रहण, दान वा अन्य किसीके ग्रहण करनेमें साहाय्य नहीं करूंगा ।

७. **ब्रह्मचर्य प्रतिमा**—मैं स्त्रीसहवास, भूषण और सुगन्धि व्यवहार नहीं करूंगा ।

८. **आरम्भ-त्याग-प्रतिमा**—मै सब प्रकारके कार्य, व्यवसाय और वाणिज्यसे विरत रहूंगा ।

९. **परिग्रहत्याग प्रतिमा**—मै बाह्य और अन्तरंग परिग्रह समूहका त्याग करूगा ।

१०. **अनुमोदनव्रत-प्रतिमा**—मै सांसारिक कार्य एवं अनामन्त्रित कोई खाद्य ग्रहण नहीं करूंगा ।

११. **उच्चिष्टव्रत-प्रतिमा**—इस प्रतिज्ञाके ग्रहण समयमें सन्यासी बेष धारण करना चाहिये । ऐलिक अथवा क्षुल्लक श्रावक होना चाहिये । ऐलिक श्रावक कोपीन (लंगोटी) परिधान और कमण्डल ग्रहण पूर्वक अरण्य (जंगल) में साधुसङ्गयुक्त रहते हैं, ऐसी प्रथा है । क्षुल्लक श्रावक एक वस्त्र वा चादर परिधान और कमण्डल ग्रहण करके, मठ, मण्डप वा मन्दिरमें वास करते हैं, ऐसा नियम है ।

पूर्वोक्त ग्यारह प्रतिमाओंके अतिरिक्त प्रत्येक जैनीको दशलाक्षणिक धर्म पालन करना चाहिये । दशलाक्षणिक धर्म ये हैः—

१. **उत्तमक्षमाधर्म**—क्रोधदमन, अपमान और क्षति (नुकसान) सह्य एवं क्षमा करना ।

२ **मार्दवधर्म**—अहङ्कारक त्याग करना ।

३. **आर्जवधर्म**—शठता और प्रवंचना (ठगाई) का त्याग करना ।

४. **सत्यधर्म**—सत्यवादी होना ।

५. **शौचधर्म**—आत्माको पवित्र रखना, दुश्चिन्ताका परित्याग करना, एवं स्नानादिके द्वारा देहको परिष्कृत रखना ।

६. **संयमधर्म**—पांच अनुव्रत Minon Vows, पांच समिति और तीन गुप्ति पालन एवं पांचों इंद्रियोंका दमन करना ।

७. **तपधर्म**—बारह प्रकारके तपोंका आचरण ।

८. **त्यागधर्म**—कुचिन्ता परिहार, धनकी लालसाका त्याग और दानादि कर्म्मानुष्ठान करना ।

९. **आकिञ्चनधर्म**—संसारमें आत्माके अतिरिक्त किंचिन्मात्र अपना नहीं है, ऐसा विश्वास रखना ।

१०. **ब्रह्मचर्यधर्म**— आत्मचिन्तामें रत और परस्त्रीगमनमें विरत रहना ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक जैनीको बारह अनुप्रेक्षा, भावना अथवा विषय चिन्ता करनी उचित है ।

१. **अनित्यानुप्रेक्षण**—जगतके समस्त पदार्थ रूपान्तरशील है, अतएव इस अनित्य जगतके लिये मैं उत्सुक नहीं होऊंगा ।

२. **अशरणानुप्रेक्षण**—जगतमें विपत्ति और मृत्युकालमें मेरा कोई सहायकारी नहीं है । मुझे ही कर्म फलोंको भोगना पड़ेगा ।

३. **संसारानुप्रेक्षण**—पूर्वजन्ममें मैने मनुष्य, देव, नारकी अथवा तिर्यञ्चरूपमें नाना दुःख भोग किये है । इस जीवनमें मुझे दुःखसे परित्राण पानेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

४. **एकत्वानुप्रेक्षण**—जगतमें मैं एकाकी तथा असहाय हूं ।

५. **अन्यत्वानुप्रेक्षण**—सांसारिक समस्तपदार्थ मुझसे पृथक् है ।

६. **अशुचित्वानुप्रेक्षण**—अशुचि पदार्थ पूर्ण देहके कारण गर्व करना अनुचित है।

७. **आस्रवानुप्रेक्षण**—मै मन, वचन, कायसे ऐसा कार्य नहीं करूंगा जो नवीन कर्मोत्पादक हो।

८. **संवरानुप्रेक्षण**—भविष्यत्में आत्माके बन्ध करनेवाले कर्मोंके प्रतिरोध करनेका उपाय करूंगा।

९. **निर्जरानुप्रेक्षण**—अतीत कर्मबन्धनोंसे छूटनेकी चेष्टा करूंगा।

१०. **लोकानुप्रेक्षण**—जगत क्या है ? पदार्थ क्या है ? तत्त्व क्या है ? इन सबकी चिन्ता करूंगा।

११. **बोधिदुर्लभानुप्रेक्षण**—इस संसारमें रत्नत्रयधर्मके अतिरेक्त संपूर्ण पदाथे सहजलभ्य हैं, ऐसी चिन्ता करूंगा।

१२. **धर्मानुप्रेक्षण**—रत्नत्रयी धर्म ही जगतमें यथार्थसुखका मूल है।

जैनधर्मकी सार शिक्षा यह है। इस जगतका सुख, शान्ति और ऐश्वर्य मनुष्यका चरम उद्देश नहीं है। संसारसे जितना बन सके, निर्लिप्त रहना चाहिये। आत्माकी मंगलकामना करो। तुम जब किसी सत्कार्यके करनेमें तत्पर होओ, तब तुम कौन हो और क्या हो, यह बात स्मरण रक्खो। यह धर्म परलोक मोक्ष विश्वासकारी योगियोंका है। सांसारिक भोग विलासकी इच्छायें जैनधर्मकी विरोधिनी है। आत्मत्याग, स्वार्थत्याग, और सुखत्याग इस धर्मकी भित्तियां हैं।

जैनधर्म मलिन आचरणकी समष्टि है, यह बात सत्य नहीं है। परन्तु यह बात सत्य है कि, ढूंढिया नामक एक श्रेणीके मूर्ख जैन हैं, जो स्वासग्रहण एवं कथावार्ताके समय कीटादि जिससे मुखमें प्रवेश न कर जावें, इसलिये एक खण्डवस्त्रसे मुख आच्छादित करके रहते हैं। वे अपरिषकार वस्त्र पहिनते है, स्नानादि प्रायः करते ही नहीं है। किन्तु इन लोगोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। दिगम्बर और श्वेताम्वर इन दो श्रेणियोंसे जैनसम्प्रदाय विभक्त है। इन दोनों श्रेणियोंके जैन शुद्धाचरणी हैं। कलकत्तेकी सड़कोंपर ढूंढिया जैनियोंको देखके हम लोग जैनियोंके आचार सम्बन्धी नानाप्रकारके कुसंस्कारोंमें पतित हो गये है।

अब जैनमुनियोंके चारित्रकी किञ्चित् आलोचना करके इस लेखका उपसंहार किया जावेगा। दिगम्बरजैनमुनिको नग्नावस्थामें अरण्यवास, भूमिशयन, सम्मुख चार हाथ प्रमाण भूमि देखके गमन, ४६ दोष और ३२ अन्तराय परिहारपूर्वक एकवार भोजन करना चाहिये। केशवृद्धि होनेपर उत्पाटन एवं बावीस परीषह वा कष्ट सहन करनेकी विधि है। चौदह आभ्यन्तरिक और दश बाह्यपरिग्रह परित्याग करनेसे निर्ग्रन्थ होते है। सर्वदा धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें मग्न रहना चाहिये। श्वेताम्बरजैनमुनि श्वेतवस्त्र परिधान, नगरमें निवास और शय्यापर शयन कर सकते है। धर्मध्यानके लिये दशलाक्षणिक धर्म,बारह प्रकार तप, तेरह प्रकार चारित्र, छह आवश्यक एवं बारह भावना वा अनुप्रेक्षाओंका आचरण करते है।

जैनशास्त्रोंके मतसे जितने दिन जैनसाधु अपनी नग्नावस्थाको नहीं भूलते हैं, उतने दिन वे मुक्त नहीं होते। इसीलिये जैनमुनि

नग्न रहते है। जब वे अपनी नग्नावस्थाको विस्मृत हो जाते हैं, तब ही भवसिन्धुसे पार हो सकते हैं। जैनधर्म ज्ञान और भावको लिये हुये है और मोक्षभी इसीपर निर्भर है। मै नग्न हूं, यह ज्ञान जब तक सर्वथा अन्तर्हित न हो जावे, तबतक निर्वाण नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिये जैनी लोग नग्न मूर्तिकी पूजा करते है। किन्तु जैनी मूर्तिपूजक यह बात स्वीकार नहीं करते। जिनकी मूर्तिकी पूजा करते है, वे नग्न थे इसीलिये उनकी मूर्ति भी नग्न रहती है। वे कहते हैं कि, मूर्ति केवल मात्र महापुरुषोंकी सहायक है। जैनियोंकी नग्नावस्था और नग्नमूर्ति-पूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करती है; क्योंकि मनुष्य आदिम अवस्थामें नग्न थे। खृष्टानोंका आदिपिता आदिम और आदिमाता इभ निष्पाप अवस्थामें नग्न थे। हिन्दूशास्त्रोंमें शिव दिगम्बर, दत्तात्रय दिगम्बर, और अवधूत दिगम्बर सम्प्रदाय वर्णित हैं वे समस्त ही पाप–पुण्य और उत्तम अनुत्तमके ज्ञानसे रहित थे।

जैनीलोग कहते है कि, हम हिन्दू है। जैनमतमें हिन्दू शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है "हिं=हिंसा=दू=दूर अर्थात् जो हिंसासे दूर रहें। सिन्धुतीरवासी आदिम आर्य्य और उनकी सन्तान सन्ततिगण हिन्दू नहीं हैं। हिंसाविरहित–व्यक्ति मात्र ही हिन्दू है।" हिन्दूशब्दकी यह जैनव्याख्या है।

रक्षणशील जैनी लोग इसीको जैनधर्म कहते है; एवं यही जैन-शास्त्रासङ्गत है। पाठकोंको स्मरण रहे कि, इस प्रबन्धमें लेखकने अपना कोई मन्तव्य प्रकाश नहीं किया है।

श्रीवरदाकान्त मुख्योपाध्याय ।

नोट—बङ्गला भाषासे हिन्दीमें अनुवाद करनेका मेरा यह प्रथम प्रयत्न है । इस प्रयत्नमें कहांतक सफलता प्राप्त हुई है, सो मैं नहीं कह सक्ता परन्तु जहां तक बना है, मूललेखकके अभिप्रायोंको स्खलित न होने देनेकी ओर पूर्ण ध्यान दिया है । इतनेपर भी यदि त्रुटियां रह गई हों, तो पाठकगणोंसे क्षमा चाहता हूं। इस लेखका अनुवाद कर चुकनेपर मुझे कार्यवश गुजराती सहयोगी 'जैन' की विगत-वर्षकी फाइल देखनेका अवसर मिला और उसके प्रथम वर्षके ३९–४० में इसी लेखका गुजराती अनुवाद पाया । खेदका विषय है कि, गुजराती अनुवादक महाशयने अनेक स्थानोंमें अर्थका अनर्थ करनेके अतिरिक्त लेखके एक आवश्यक अंशको सर्वथा उडा दिया है । यह उड़ाया हुआ अंश लेखके अन्तका है, जो ढाई कालिमसे कम नहीं होगा । इस अंशमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुकूल बहुत थोडी बातें है, कदाचित् इसलिये आपने उसका उड़ा देना ही अच्छा समझा हो । जो हो, परन्तु दूसरेकी कृतिको नष्ट करना सभ्यतासे बहिर्भूत है । यदि लेख समाजके अनुकूल नहीं था, तो सम्पूर्ण ही परित्याग कर देना था, एक अंश लेना और एक छोड देना चोरी है। आशा है कि सहयोगी जैनके लेखक इस बातको स्मरण रक्खेंगे । एक कविने कहा है—

कविरनुहरतिच्छायांकुकविशब्दः पदानि चाण्डालः ॥
अखिलप्रबन्धं हर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम् ॥

अनुवादक—

नाथूरामजी प्रेमी ।

(८)

श्रीयशोविजय जैनपाठशाला काशीमें महामहोपध्याय श्री स्वामी राम-मिश्रजी शास्त्रीका जैन धर्म-पर व्याख्यान ।

श्रीमते रामानुजायनमः ।

सज्जन महाशय !

आज वड़ा सुदिन और माङ्गलिक समय है कि, हमें भारत-वर्षीय जिनके यहा सृष्टिके आदिकालहीसे सभ्यता, आत्मज्ञान, परार्थे आत्मसमर्पण, आत्माकी अनाद्यन्तताका ज्ञान चला आया है वल्कि समयके फेरसे कुछ; पुरानी प्रतिष्ठा पुरानीसी पड गई है, वे इस स्थानमें एकत्र हुये है अवश्यही इसे सौभाग्य मानना और कहना चाहिये, क्योंकि वैदिकमत और जैनमत सृष्टिकी आदिसे वरावर अविछिन्न चले आये हैं और इन दोनों मजहवोंके सिद्धान्त विशेष घनिष्ठ (समीप) सवन्ध रखते है जैसा कि, पूर्वमें मै कह चुका हूं अर्थात् सत्कार्यवाद, सत्कारणवाद, पर-लोकास्तित्व, आत्माका निर्विकारत्व, मोक्षका होना और उसका नित्यत्व, जन्मान्तरके पुण्य पापसे जन्मान्तरमें फल भोग, व्रतो-पवासादिव्यवस्था, प्रायश्चित्तव्यवस्था, महाजनपूजन, शव्दप्रामाण्य इत्यादि समान हैं, वस तो इसी हेतु यहां यह कहते हुए मेरा शरीर पुलकित होता है कि, आजका यह हमारा जैनोंके संङ्क

एक स्थानमें उपस्थित होकर संभाषण वह है कि, जो चिरकालके बिछुड़े भाई भाईका होता है । सज्जनों ! यहभी याद रखना जहां भाई भाईका रिश्ता है वहां कभी कभी लड़ाईकीभी लीला लग जाती है परन्तु याद रहे उसका कारण केवल अज्ञानही होता है ।

इस देशमें आजकल अनेक अल्पज्ञ जन बौद्धमत और जैनमतको एक जानते हैं और यह महाभ्रम है । जैन और बौद्धोंके सिद्धांतको एक जानना ऐसी भूल है कि, जैसे वैदिक सिद्धांतके मान कर यह कहना कि, वेदोंमें वर्णाश्रमव्यवस्था अथवा जातिव्यवस्था नहीं है, अथवा यह कहना कि, द्विजोंने शूद्रोंका झूठ-मूठ छोटा बनाकर उन्हें बड़े क्लेश दिये, अब हम उन्हें क्लेशमुक्त करेंगे सज्जनो ! आप जानते हैं दुनियामें रुपया बहुतही आवश्यक वस्तु है और वह बड़ेही कष्टसे मिलता है यदि कोई उसका सीधा और उत्तम द्वार है तो शिल्प और सेवा, तो अब ध्यानसे विचारिये कि द्विजोंमें ब्राह्मण और क्षत्रिय सबसे बड़े समझे गये हैं उन्होंने अपने हाथमें आवश्यक बात कोई न रक्खी । ब्राह्मणोंने अपने हाथमें केवल कुश मुष्टि रक्खी और क्षत्रियोंने खड्ग कोशमुष्टि रक्खी । तब भला देखो तो जिन्होंने अपने हाथमें निकम्मी चीजें रख कर वैश्योंको कृषिवाणिज्य दे डाला और शूद्रोंको उससेभी बढ़ कर शिल्प और सेवा दे डाली । सज्जनों ! जानते हो शिल्प कौन चीज है ? शिल्प वह है कि, जिसके कारण इंगलेंड जगत्का बादशाह है नहीं २ कहो शाहनशाह है और जिसके अभावहीसे

हमारा देश, देश इसे क्या कहें, जन्मभूमी, जननी भारत-भूमि रसातलको जा रही है। विचारका स्थान है जब शिल्प शूद्रोंके हाथमें दे डाला तब तो वैश्यभी विचारे शूद्रोंके पीछे पड़ गये; क्योंकि कृषिमें दैवी आपत्का भय रहता है और वाणिज्यमें तो औरभी अधिक आपत्ति है, सबसे अच्छी शूद्रोंकी जीविका है। शिल्प, और सेवा, जिसके न कोई आपत है नतो नुकसान। तब ही तो कहा गया है–

स्वर्णपुष्पमयीं पृथ्वीं चिन्वंति पुरुषास्त्रयः।
शूराश्च कृतविद्याश्च ये च जानन्ति सेवितुम्॥

तब तो देखनेका स्थान है कि, क्षत्रियकी जीविका तो हथेलीमें जान रख कर है और ब्राह्मणकी तो उससेभी कठिन है। जब वह बारह और बारह चौवीस वर्ष विद्यार्जन करेगा तब वह जीविका करेगा परन्तु शूद्रका जीवन कैसा सुलभ है। जहापर देखो वहापर सर्वत्र शूद्रोंपर अनुग्रह है–

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति।

द्विजोंके लिये मुनने नियम किया है कि, वे फलां फलां देशमें निवास करें। परन्तु शूद्रोंके लिये वे कहते हैं–

एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः।
शूद्रस्तु यत्र कुत्रापि निवसेद् वृत्तिकर्षितः॥

तब तो शूद्रोंके लिये मनुने देशकी यथेच्छ आज्ञा देदी. अब क्या चाहिये!

बस, तो इस रीतिपर यहभी अज्ञोंकी दन्तकथा है कि, जैन और बौद्ध एक समान हैं। सज्जनो ! बुरा न मानों और बुरा माननेकी बातही कौनसी है जब कि, खाद्यखण्डनकार श्रीहर्षने स्वयं अपने ग्रन्थमें बौद्धके साथ अपनी तुलना की है और कहा है कि, हम लोगोंसे (याने निर्विशेषाद्वैत सिद्धान्तियोंसे) और बौद्धोंसे यही भेद है कि, हम ब्रह्मकी सत्ता मानते हैं. और सब मिथ्या कहते हैं, परन्तु बौद्धशिरोमणि माध्यमिक सर्व शून्य कहता है तब तो जिन जैनोंने सब कुछ माना उनसे नफरत करनेवाले कुछ जानतेही नहीं और मिथ्या द्वेष मात्र करते है यह कहना होगा।

सज्जनों ! जैनमतसे और बौद्धसिद्धान्तसे जमीन आसमानका अन्तर है। उसे एक जान कर द्वेष करना यह अज्ञजनोंका कार्य है। सबसे अधिक वे अज्ञ है कि, जो जैन सम्प्रदायसिद्ध मेलोंमें विघ्न डाल कर पापभागी होते है।

सज्जनो ! आप जानते है जैनोंमें जब रथयात्रा होती है तब किनकी मूर्ति रथमें बिराजती हैं ? सज्जनो ! देव गन्धर्वोंसे लेकर पशु पक्षि पर्यन्त जो पूजा की जाती है वह किसी मूर्तिकी ! अथवा मट्टी पत्थरकी। नहीं की जाती है। जो ऐसा जानते हैं वे ऐसे अज्ञ है कि, उन्हें जगत्‌में डेढ़ अकल मालूम होती है याने एक में आप स्वयं, आधींमें सब जगत्। क्या मूर्तिपूजक मूर्त्ति निन्दकोंसेभी कम अकल है !

सज्जनों ! मूर्त्तिपूजा वह है कि, जिसे मूर्तिनिन्दक नित्य करते

हैं परन्तु यह नहीं जानते कि, इसमें हमारीही निन्दा होती है। देखिये ऐसा कौन देश, नगर, ग्राम, वन, उपवन हैं कि, जहां पूज्य महारानी बिक्टोरियाकी मूर्ति नहीं है और लोग उसे पवित्र भावसे पूजन नहीं करते! ठीक ही है।

गुणाः सर्वत्र पूज्यंते! पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।

जब उनमें ऐसे गुण थे तो उनकी पूजा कौन न करे। बस तो अब आपको ढोलकी पोल अवश्य ज्ञात हुई होगी, मिशनरी लोगोंकी मूर्तिपूजन निन्दा देख करही हमारे (मजहबी न सही देशभाई ब्रह्मसमाजी आर्य्यसमाजी) देशवासी मूर्तिनिन्दा करने लगे हैं।

सज्जनों! बुद्धिमान् लोग जब गुणकी पूजा करते है तब जैसी हमारी पूज्य मूर्तियोंमें पूज्यता बुद्धि है वैसेही जहा पूजा योग्य गुण हैं वहां सर्वत्र पूजा करना चाहिये। सज्जनों! ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, क्षान्ति अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध, अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता इत्यादि गुणोंमें एक एक गुण ऐसा है कि, जहां वह पाया जाय वहांपर बुद्धिमान् पूजा करने लगते हैं तब तो जहा ये पूर्वोक्त सब गुण निरतिशयसीम होकर विराजमान हैं उनकी पूजा न करना अथवा गुण पूजकोंकी पूजामें बाधा डालना क्या इनसानियतका कार्य है? महाशय! वैदिक जन! अथवा मूर्तिपूजा विद्वेषि नूतन मजहबी सुजन जन! जैनोंमें जिनका रथ प्रायः निकलता है वह किनका निकलता है? आप जानते हैं? व महानुभाव हैं? पारसनाथ स्वामी, महावीर स्वामी जिनदेव और ऐसेही ऐसे तीर्थंकर, तब तो उनकी पूजाका विरोध करना अथवा

निन्दा करना यह अज्ञका कार्य नहीं है? सज्जनों! आपने कभी यह श्लोक सुना है जिनमें पार्श्वनाथ स्वामीके विषयमें कामदेव और उनकी पत्नीका सम्वाद है।

कोऽयं नाथ! जिनो भवेत्तव वशी हूँ हूँ प्रतापी प्रिये
हूँ हूँ तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियाम्॥
मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयम्॥
इत्येवं रतिकामजल्पविषयः पार्श्वः प्रभु पातु नः॥

सज्जनों! जिनके ब्रह्मचर्यकी स्तुति काम और रति करते है वे कैसे हैं जिनकी हुशयारीको चोर सराहे वेही तो हुशयार हैं! पूरा विश्वास है कि, अब आप जान गये होंगे कि, वैदिक सिद्धान्तियोंके साथ जैनोंके विरोधका मूल केवल अज्ञोंकी अज्ञता है। और वह ऐसी अज्ञता है कि, अनेक बार पूर्वमें उस अज्ञातके कारण अदालत हो चुकी है। सज्जनों! अज्ञता ऐसी चीज है उसके कारण अनेक बेर अनेक लोग बिना जाने बूझे दूसरेकी निन्दा कर बैठते है। थोड़ेही दिनकी बात हैं कि, किसीने नये मजहबी जोशमे आकर जैनमतमें मिथ्या आरोप किये और अन्तमें हानि उठाई। मैं आप को कहांतक कहूं बड़े २ नामी आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें जो जैनमत खण्डन किया है वह ऐसा किया है कि, जिसे सुन देखकर हँसी आती है।

मैं आपके संमुख आगे चल कर स्याद्वादका रहस्य कहूंगा तब आप अवश्य जानजांयगे कि, वह एक अभेद्य किला है उसके अंदर मायामय गोले नहीं प्रवेश कर सकते। परंतु साथही खेदके साथ कहा जाता है कि, अब जैनमतका बुढापा आगया है अब इसमें

इने गिने साधु, गृहस्थ, विद्यावान् रहगये हैं । जैसे कि, साधुवर्य परमोदासनिस्वभाव, आत्मविज्ञानपरायण, ज्ञानविज्ञानसपन्न श्री धर्म-विजयजी साधुसंप्रदायमें है और गृहस्थोंमें तो विद्वानोंकी संख्या औरभी कम है जहांतक मुझे यादगारी और जानकारी है पण्डित शिरोमणि पन्नालालजी न्यायदिवाकर इस मतके अच्छे जानकार हैं और उनके कारण जैन संप्रदायकी वड़ी प्रतिष्ठा है और नाम है। और नवीन गृहस्थमण्डलीमें होनहार और जैन सम्प्रदायको लाभ पहुचानेकी योग्यतावाले खुरजाके सेठ मेवारामजी है, वे शास्त्रानु-रागी है और शास्त्रज्ञानुरागी है उन्होंने अपने यहां एक स्वरूपानु-रूपा संस्कृतपाठशाला स्थापित की है और उस पाठशालमें विविध विद्या विशारद प्रसिद्धनामा श्रीमान् पण्डित चण्डीप्रसादजी सुकुल जैसे धुरन्धर अध्यापक है। देखा जाता है कि,इस पाठशालाका फल उत्तम है प० श्यामसुन्दर वैश्य इसी पाठशालाके फलस्वरूप है जिनका शास्त्रमें अच्छा अभिनिवेश है. आशा है कि, यह पाठशाला जैन लोगोंमें विद्याप्रचारकी मूलभूत होगी। सज्जनों ! एक दिन वह था कि, जैनसम्प्रदायके आचार्योंके हुङ्कारसे दसों दिशाएं गूँज उठती थी. एक समयकी वार्ता है कि, हमारेही (याने वैदिक संप्रदायी वैष्णवने) किसी साम्प्रदायिकने हेमचन्द्राचार्यजीको देख कर (जोकि संन्यासवेषके थे) कहा।

आगतो हेमगोपालो दण्डकम्बलमुद्वहन् ।

बस तो फिर क्या था उन्होंने मन्दमुसुकानके साथ उत्तर दिया कि

षड्दर्शनपशुग्रामांश्चारयञ्जैनवाटके ॥

सज्जनों ! इस श्लोकके पूर्वार्ध और उत्तरार्धको सुनकर आप लोग खूब जानगये होंगे कि, पूर्व समयपर आपसमें विद्वानोंके हँसी ठठोलभी कैसे होते थे । ये महानुभाव हेमचन्द्राचार्य व्याकरणसे लेकर दर्शनशास्त्रपर्यंत सर्व विषयमें अप्रतिम आचार्य थे । सज्जनो जैसे कालचक्रने जैनमतके महत्त्व को ढांक दिया है. वैसेही उसके महत्वको जाननेवाले लोगभी, अब नहीं रहगये । **रज्जबसांचे सूरको बेरी करे बखान** । यह किसी भाषा कविने बहुतही ठीक कहा है । सज्जनों आप जानते हो मैं उस वैष्णवसंप्रदायका आचार्य हूँ यही नहीं है मैं उस सांप्रदायका सर्वतोभावसे रक्षक हूँ और साथही उसकी तरफ कड़ी नजरसे देखनेवालेका दीक्षकभी हूँ तौभी भरी मजालिसमें मुझे यह कहना सत्यके कारण आवश्यक हुआ है कि, जैनोंका ग्रंथसमुदाय, सारस्वत महासागर है । उसकी ग्रन्थसंख्या इतनी अधिक है कि, उन ग्रन्थोंका सूचीपत्रभी एक महानिबन्ध हो जायगा जिन्होंने जैनपुस्तकभण्डार देखे हैं उन्हें यह कहना आवश्यक न होगा कि, जैनोंकी ग्रन्थसंख्या जितनी सुदीर्घ है उतनी (वैदिक संप्रदाय छोड़कर) अन्यकी नहीं है । और उस पुस्तक समुदायका लेख और लेख्य कैसा गम्भीर, युक्तिपूर्ण, भावपूरित विशद और अगाध है ! इसके विषयमें इतनाही कह देना उचित है कि, जिन्होंने सारस्वतसमुद्रमें अपने मतिमन्थानको डाल कर चिरान्दोलन किया है वेही जानते हैं । तबही तो कहागया है कि—

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतम् ।
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ॥

अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किंतस्य ।
गम्भीरतामापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानति मन्थाचलः ॥

सज्जनो ! जैनमतका प्रचार कबसे हुआ इस बारेमें लोगोंने नाना
कारकी उछल कूद किई हैं और अपने मनोनीत कल्पना किई है।
र यह बात ठीकभी है जिसका जितना ज्ञान होगा वह उस
तुको उतनाही और वैसाही समझेगा। किसी अन्धेने हाथी
पूछको धरा और कहने लगा कि, हाथी लाठी जैसा लंबा होत
। परन्तु दूसरे अन्धेने जब उसकी पीठ छुई तो कहने लगा कि
ह छात जैसा होता है। परन्तु हाथीके कान स्पर्श करनेवालेने
कहा कि, वह सूप जैसा होता है।

तो बस यही हाल ससारका है जिसके यहा जब सभ्यताका
चार हुआ तो उसने उसी तारीखसे दुनियाकी सब बात मान ली।
। छ. हजार वर्षसे सृष्टिको मान बैठे हैं, उन्हें हम यदि अपना
त्यस्नानका संकल्प सुनावें तो वे हँस देंगे और कहेंगे कि, कृष्ण
हर कल्प, श्वेत वाहर कल्प, ब्रह्माका द्वितीय परार्द्ध और मनु,
न्वतर, चतुर्युग व्यवस्था यह सब कल्पित है।

तब उन्हें जैनमत प्रचारकी तारीख भी अवश्य इन्ही नजयके
नुसारही कहनी होगी। और कह देंगे कि, अधिकभी यदि जै-
मत के प्रचारका काल कहा जाय तो हटी नहीं होगी। परन्तु
सज्जनों ! हम आपको ऐसी कच्ची मनमानी बात न कहनी
चाहिये। ईश्वरकी सृष्टि अनादनन्त है और कल्पकी पुनर्कल्प
जब ऐसी स्थिति है तब तो इस कल्पकी इन सृष्टिकोंको इतना

समय बीत चुका है कि, जिसके अङ्कोंकी शून्य सूचक बिन्दुमाला देख कर बुद्धिमान् गणककी बुद्धिमेंभी चक्कर आ जायगा।

सज्जनों! यह सृष्टि बहुतही प्राचीन कालसे चली आती है और आप यहभी जानते है कि, सृष्टिकी आदिहीमे सर्जन करनेवालेने आवश्यक वस्तुओंका ज्ञान दे दिया था, उसका निरूपण मेरे जैसा अज्ञ कहांतक कर सकता है, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि, परमेश्वरने अपनी सृष्टिमें लौकिक उन्नतिकी सीढ़ी पर्यन्त सबही विषय सृष्टिके आदिमे जीवोंको दिखा दिया था तो अब आप ऐसा जानिये कि, जैसे उन्हें आदिकालमें खाने पीने न्याय, नीति और कानूनका ज्ञान मिला, वैसेही अध्यात्म शास्त्रका ज्ञानभी जीवों-ने पाया। और वे अध्यात्म शास्त्रमें सब है जैसे सांख्य योगादि दर्शन और जैनादि दर्शन।

तब तो सज्जनों। आप अवश्य जान गये होंगे कि, जैनमत जबसे प्रचलित हुआ है। जबसे संसारमें सृष्टिका आरम्भ हुआ तबसे यही इसका सत्य उत्तर है।

जिनकी सभ्यता आधुनिक है वे जो चाहें सो कहें परन्तु मुझे तो (जिसे अपौरुषेय वेद माननेमे किसी प्रकारका असंतोष और अनङ्गीकार नहीं है यही नहीं, परन्तु सर्वथा तृप्ति, विश्वास, और चेत प्रसत्ति है) इसमें किसी प्रकारका उज्र नहीं है कि, जैन दर्शन वेदान्तादि दर्शनोंसेभी पूर्वका है। तबही तो भगवान् वेद-व्यास महर्षि ब्रह्मसूत्रोंमें कहते है:—नैकस्मिन्नसंभवात्। सज्जनों! जब वेदव्यासके ब्रह्मसूत्र प्रणयनके समयपर जैनमत था। तब तो उसके खण्डनार्थ उद्योग किया गया, यदि वह पूर्वमे नहीं था तो

यह खण्डन कैसा और किसका ? सज्जनों ! समय अल्प है और कहना बहुत है इससे छोड़ दिया जाता है नहीं तो बात यह है कि, वेदोंमे अनेकान्तवादका मूल मिलता है । सज्जनों! मै आपको वेदान्तादि दर्शन शास्त्रोंका और जैनादि दर्शनोंका कौन मूल है यह कह कर सुनाताहूँ । उच्च-श्रेणीके बुद्धिमान् लोगोंके मानस निगूढ विचारही दर्शन हैं। जैसे—अजातवाद, विवर्तवाद, दृष्टिसृष्टिवाद, परिणामवाद, आरम्भवाद, शून्यवाद, इत्यादि दार्शनिकोंके निगूढ विचारही दर्शन हैं । बस तब तो कहना होगा कि, सृष्टिकी आदिसे जैनमत प्रचलित है सज्जनों! अनेकान्तवाद तो एक ऐसी चीज है कि, उसे सबको मानना होगा, और लोगोंने माना भी है । देखिये विष्णु पुराणमें लिखा है—

> नरकस्वर्गसञ्ज्ञे वै पुण्यपापे द्विजोत्तम !
> वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्याजमाय च ।
> कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ?

यहांपर जो पराशर महर्षि कहते है कि, वस्तु वस्त्वात्मक नहीं

जाय तो अनेकान्तवाद माननेमें उज्र नहीं है क्योंकि जब वस्तु सत्‌भी नहीं कही जाती और असत्‌भी नहीं कही जाती तो कहना होगा कि, किसी प्रकारसे सत् होकरभी वह किसी प्रकारसे असत् है। इस हेतु न वह सत् कही जा सकती है, और न तो असत् कही जा सकती है, तो अब अनेकान्तता मानना सिद्ध होगया।

सज्जनों! नैयायिक तमको तेजोऽभावस्वरूप कहते है और मीमांसक और वेदान्तिक बड़ी आरभटीसे उसको खण्डन करके उसे भावस्वरूप कहते है तो देखनेकी बात है कि, आजतक इसका कोई फैसला नहीं हुआ कि, कौन ठ़ीक कहता है, तो अब क्या निर्णय होगा कि, कौन बात ठीक है, तब तो दोकी लड़ाईमें तीसरेकी पौवारा है याने जैनसिद्धान्त सिद्ध हो गया; क्योंकि वे कहते हैं कि, वस्तु अनेकान्त है उसे किसी प्रकारसे भावस्वरूप कहते है, और किसी रीतिपर अभावस्वरूपभी कह सकते है। इसी रीतिपर कोई आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं और कोई ज्ञानाधारस्वरूप बोलते है तो बस अब कहनाही क्या अनेकान्तवादने पद पाया। इसी रीतिपर कोई ज्ञानको द्रव्यस्वरूप मानते है और कोई वादी गुणस्वरूप। इसी रीतिपर कोई जगतको भावस्वरूप कहते है और कोई शून्यस्वरूप तब तो अनेकान्तवाद अनायास सिद्ध हो गया।

कोई कहते हैं कि, घटादि द्रव्य हैं और उनमें रूपस्पर्शादि गुण है। परन्तु दूसरी तरफके वादी कहते है कि, द्रव्य कोई चीज नहीं है, वह तो गुण समुदायस्वरूप है। रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण

इत्यादिका समुदायही तो घट है इसे छोड़कर घट कौन वस्तु, है। कोई कहते है आकाश नामक शब्दजनक एक निरवयव द्रव्य है। परन्तु अन्यवादी कहते हैं कि, वह तो शून्य है।

सज्जनों! कहांतक कहा जाय कुछ वादियोंका कहना है कि, गुरुत्व गुण है। परन्तु दूसरी तरफ वादी लोगोंका कहना है कि, गुरुत्व कोई चीज नहीं है पृथ्वीमें जो आकर्षण शक्ति है उसे न जान कर लोगोंने गुरुत्व नामक गुण मान लिया है।

मित हित वाक्य पथ्य है। उसीसे ज्ञान होता है वाग्जालका कोई प्रयोजन नहीं है इस हेतु यह विषय यहाही छोड़ दिया जाता है, और आशा की जाती है कि, जैनमतके कामिक व्याख्यान दिये जांयगे।

शुभानि भूयासुर्वर्द्धमानानि। शुभम्

स्वामी राममिश्र शास्त्री
अगस्त्याश्रमाश्रम
काशी.

मि० पौप शुक्ल प्रातिपत्—बुधवार स० १९६२

---

(१०)

विदेशोंमें जैनधर्म.

[नाहन निवासी बाबू देवीसहाय द्वारा लिखित]

भूमिका

प्रियवर महाशय गण ! संसार की गति बड़ी विचित्र है कि, जो जाति एक समय सारे भूमंडल पर फैली हुई थी, जो अपनी धर्मरूपी किरणोंसे समस्त पृथ्वी को प्रकाशमान करती थी, हाय! उसके आज केवल १४ लक्ष मनुष्य ही शेष रह गये । वह धर्म जिसके बड़े २ आचार्य धर्म तत्त्व का उपदेश करनेके लिये महान कष्ट सहकर भारतवर्ष से अन्य देशों में विहार करते थे, और अपनी सिंहनाद से भिन्न धर्मियों का हृदय कंपायमान करते थे, हाय ! वह धर्म आजकल लुप्तप्राही हो गया है; और उसके सिद्धान्तोंका उपदेश करनेवाला एक भी महान पंडित दृष्टिगोचर नहीं होता । कैसे खेद का स्थल है कि, जिस धर्म का सर्व प्राणियों के लिये शान्तिमय उपदेश हो जिसने हरएक दशा में हिंसा को पापजनक बताया हो और जिसके विषयमें मिस्टर जे० ए० डुबाई (J. A. Dubois) जैसे मिशनरी ने निष्पक्षपात होकर यह लिखा है:—

'Yea ! his (Jain) religion is the only true one upon earth, the primitive faith of all mankind.'

अर्थ—" निःसंदेह जैनधर्मही पृथ्वीपर एक सच्चा धर्म है, और यही मनुष्य मात्र का आदि धर्म है । "

उसी धर्म के विषय में आज तरह २ की स्वकपोल काल्पित कल्पनायें होरही है; और द्वेषबुद्धि से अनेक प्रकार के निर्मूल आक्षेप किये

जाते है। इसमें जैनजाति ही की पुरुषार्थ हीनता के अतिरिक्त और किसका दोष बतावें ? शास्त्रों के देखने से पूर्णतया स्पष्ट सिद्ध होता है कि, प्राचीन कालमें यह धर्म आज कल की नाईं भारतवर्ष में ही महदूद नहीं था, वरन् प्राय. सारे भूमंडल पर इसकी पताका फहराती थी। इस बात को दिखाने के लिए अन्यमत के कुछ विद्वानों की सम्मतियां, जो उन्होंने इस विषय में निर्पक्ष होकर दी है इस छोटे से रिसाले में लिखी जाती है। जैन-शास्त्रों में जो लेख इस विषय के मिलते है वे किसी उचित समय पर प्रकट किये जायगे। आशा है कि, पाठक महाशय! इसको पढकर विचार करेंगे, और यदि उनके चित्त में कोई भ्रम इस विषय में हो तो उसको दूर कर दासको कृतार्थ करेंगे। किम्बहुना ॥

देवीसहाय।

भारतवर्षसे बाहर अन्य देशों में जैनधर्म।

" यो विश्व वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा।
पौर्वापर्याविरुद्ध वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ॥
तं वन्दे साधुवंद्यं सकलगुणानिधिं ध्वस्तदोपाद्विपन्तम्।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिव वा ॥ "

स्वामी अकलंक देव।

सबसे पहिले जैनमत के एशिया (Asia) में फैलने के प्रमाण दिये जाते है, जो निम्न लिखित है;—

एशिया (Asia).

मिस्टर अवि जे० ए० डुवाई (Abbe J.A Duboia) मैसूर देश में मिशनरी (पादरी) थे। आपने फरांसीसी भाषा में भारत-के लोगोंका हाल लिखा है। पुस्तक का नाम " भारतवर्ष के लोगों के स्वभाव, आचरण और रीतियों का, और उनके धर्म तथा गृहस्थ सम्बन्धी कामों का वर्णन "

Description of the character, manners and customs of the people of India and of their institutions, religious and civil (है। यह पुस्तक सन् १८०६ में मैसूर के एक्टिंग रेजडिन्ट मेजर विल्क (Major Welke, Acting Resident at Mysore) के हाथ लगी।

जिन्होंने मदरास अहाते के गवर्नर साहबके पास बहुत प्रशंसा के साथ इस पुस्तक को भेजा। उक्त महोदयने दो हजार पैगोड़ा (दक्षिण की एक मुद्रा का नाम) में इसको खरीद कर प्रकाशित करने के लिये २४ दिसम्बर १८०७ ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company)के डाइरेक्टरों (Directors) के सुपुर्द किया, जिन्होंने इसका फरांसीसी भाषा से अङ्गरेजी भाषा में उल्था कराकर सन् १८१७ में प्रकाशित किया। इस पुस्तक के विषय में मेजर विल्क्स (Major wilks) ने मदरास के गवर्नर साहब को लिखा था कि, इसमें वहुत ठीक २ और जहुग्राही वर्णन है, और इसमें किसी प्रकार का सदेह करना योग्य नहीं है।" लार्ड विलियम बेटिन्क (Lord William Bentinck) ने भी जो भारतवर्ष के गवर्नर जनरल (Governor General)

रह चुके है इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा लिखी है। इसी पुस्तक की भूमिका के अन्त में सम्पादक ने इस प्रकार लिखा है:—

I have subjoined to the whole an appendix containing a brief account of the Jains, of their doctrines the principal points of their religion and their peculiar customs.

Other writers possessing more information than I do, will hereafter instruct us more fully concerning this interesting sect of Hindus and particularly respecting their religious worship, *which probably at one time was that of all* Asia from Sibiria to Cap Comorin, north to south, and from the Caspian to the Gulf of Kamaschatka, from west to East, &c. —

अर्थ—मैंने अन्त में एक (Appendix) लगाया है, जिसमें मैंने जैनियों और उनके मन्तव्य, उनके धर्म की बड़ी २ बातें और विशेष रीति रिवाजों का वर्णन किया है। मुझसे अधिक ज्ञान वाले अन्य लेखक महाशय हिन्दुओंकी इस लाभदायक जाति और विशेष कर उनकी धर्मसम्बन्धी पूजा के हाल से हमको आइन्दा अधिक परिचित करेंगे। यह पूजा किसी समय में अवश्य सारे एशिया (Asia) में अर्थात् उत्तर में साईबीरिया (Sibiria) से दक्षिण को रास कुमारी (Cape Comorin) तक और पश्चिम में कैस्पियन झील (Lake Caspian) से लेकर पूर्व में कमस्कटका की खाडी (Gulf of Kamaschatka) तक फैली हुई थी, इत्यादि।" क्या इससे अधिक स्पष्ट और विश्वास योग्य अन्य कोई साक्षी हो सकता है?

जैनधर्म के एशिया (Asia) में प्रचलित होनेका एक यही प्रमाण नहीं है। और भी इसी विषय का प्रमाण देखिए:—

मिस्टर थामस सी० राईस० बी० ए० (Mr. Thomas C Rice, B. A.) ने मालावार क्वार्टर्ली रिव्यु (Malabar quarterly Review) बाबत दिसम्बर सन् १९०४ जिल्द तीसरी में " कर्नाटक में जैनियोंका निवास (Jain Settlement in Karnata) नाम का एक लेख छपवाया है। उसके पृष्ठ ३१५ के फुटनोट ३ में आप लिखते है:—" According to a Jain Purana quoted by Wilks, the historian of Mysre, the said Parsva Bhattaraka was the sister's son of Vardhman the celebrated Jain Saint, the last of the series of twenty four, who founded a new religious sect chiefly supported by magical illusions *who extended his religion westward towards Persia and Arabia.*"

अर्थ—'मैसूर के इतिहास लेखक विल्क्स (Wilks) साहब ने एक जैनपुराण के अनुसार लिखा है कि, उक्त पार्श्व भट्टारक प्रसिद्ध जैनयति वर्द्धमान के भानजे थे। वर्द्धमान चौवीस तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर हुये थे। जिन्होंने इन्द्रजालिक माया संयुक्त (केवल ज्ञानविभूति सहित) नये धर्म का प्रादुर्भाव क्रिया और जिन्होंने पश्चिम में फारिस और अरब की तरफ अपने धर्म को फैलाया। इसी बातको सिद्ध करता हुआ और प्रमाण भी देखिय। नीचे उस चिट्ठी की नकल है जो बाबू सरतचन्द्र दास सी० आई० ई० सेक्रेटरी भारतवर्षीय बौद्धटेक्स्ट सोसाईटी (Babu Sarat Chandra Das, C. I E. the Secretary of the Budhist Text Soci-

ety of India ने बा० बनारसीदास साहब एम्० ए०, एल० एल० बी०, एम० आर० ए० एस०, के पास एक चिट्ठी के उत्तर में भेजी थी और जो जैन इतिहास सीरीज (अङ्गरेजी) नं०१ के पृष्ट ७९ पर छपी है। आप लिखते हैः—

I must apologise for allowing your first letter to remain un-replied so long I have read in a Tibetan work the mention of Jain School of Philosophy. A few years ago, late Professor Buhler, Ph D., C. I. E., of Vienna, wrote to me to say that the *Jaina had a profound scholar in Acharya Kamalsila* in the 8th century A. D., and was it not the eminent philosopher who was invited to Tibet by king Throng-de hu tsan to hold a controversy with a Chinese Buddhist Philosopher, named Hoshanga Mahayana? the Tibetan King ruled in Tibet about the middle of the 8th century and found Komalasila's Logic to be more powerful than that of the Chinese philosopher. He accordingly placed the garland of victory in the Indian philosopher's neck *From that time the Tibetans became the followers of Kamalasila.* Kindly enquire what works Kamalasila wrote, so that I may verify the same I do not know if Jainism flourished in China and if it was taken there

Acharya Kamalasila's works are said to exist in the Jeypore Library and the Bhoswals know of it.

अर्थ—मैं आपसे क्षमा मांगता हूं कि, आपकी पहिली चिट्ठी इतने समयतक उत्तर दिये बिना पड़ी रही। मैंने तिब्बत की

एक पुस्तक में जैन दर्शन का वर्णन पढ़ा है। कई वर्ष हुये कि, वायना के स्वर्गवासी प्रोफेसर बूल्हर, पी० एच० डी०, सी० आई०, ई० (late Profesor Buhler, Ph. D. C. I. H. of Vienna ने मुझको लिखा था कि आठवीं शताब्दी सन् ईस्वी में आचार्य कमलशील जैनियों के पूर्ण विद्वान् थे। और क्या यह वही प्रसिद्ध विद्वान् नहीं थे जिनको महाराजा थिसरगंडीहुशान ने चीनदेश के बौद्धमती विद्वान् हैशंग महायाना से शास्त्रार्थ करने के लिए तिब्बत में बुलाया था ? इस तिब्बती राजाने तिब्बत में आठवीं शताब्दी के मध्य के निकट राज किया, और कमलशील की युक्तिको चीनी नैयायक की युक्तिसे ज्यादः प्रबल देखा, चुनाचि उसने भारतवर्ष के नैयायक (कमलशील) की गर्दन में जयमाल डाल दी। उससमय से तिब्बत के रहनेवाले कमलशील के अनुयायी होगये। कृपा करके आप इस बात को दरयाफ्त करें कि कमलशीलने कौन २ से ग्रंथ बनाये है जिससे मै इस बातका निश्चय कर सकूं। मुझको यह मालूम नहीं है कि, जैनमत का चीनदेशमें भी प्रचार हुआ और वह वहां गया या नहीं।

कहते है कि आचार्य कमलशील के ग्रंथ जयपुर के पुस्तकालय में मौजूद है, और ओसवाल इस बात को जानते हैं।

योरुप (Europe)

योरुप बर्रे आजम भी जैन से शून्य नहीं था। इस बातकी साक्षी के लिए आप उर्दू की पुस्तक " हिन्दुस्तान कदीम " का अवलोकन करे। यह पुस्तक बाबू प्यारेलाल साहब जमीदार बरोठा जिला अलीगढ़ने जिन्होंने अनेक उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं,

बनाई है । इसमें वे यह सिद्ध करते हुये कि, प्राचीन काल में हिन्दू युनान देशमें वसते थे, पृष्ट १ के फुटनोट में लिखते है,

"जब बौद्धमत और हिन्दूमत के लोगों में सारे हिन्दुस्तान में सग्राम होरहा था तब बौद्धमत और जैनमत के लोग यहां से निकलकर इन देशों (यूनान, फिनीशिया, फिलस्तीन, कार्थेज, रूम और मिश्र) में पहुंच कर आबाद हुये।"

आगे चलकर पृष्ठ १३ पर आप फिर लिखते हैं:—"बौद्धमत के लोग और जैनी भी यूनान में जाकर बसे थे उसका भी हाल सुनिये, निशानात (चिन्ह) मौजूद है:—

Thiace—Sracas जैनियों का एक फिरका Peiia-Bihari जैनी लोगोंके विहार का देश ।

जब यूनान मे बौद्धमत, जैन, और हिन्दूमत एक साथ फैले तो उनके तीन राजा वहा मुकर्रर हुये । उनके नाम:—

Triptolema श्री बुद्धलामा

Eumolpotes सुमल बुद्ध

Dioscles देव कुलेश ब्राह्मण मत का राजा इत्यादि' फिर पृष्ठ १७ पर आप प्रश्न करते हुये लिखते है;

"आप बतला सकते है कि, यूनान मे जो पर्वत (Parnasus) पर्णालस है उसका दूसरा नाम Devanika (देवानिका) क्यों पड़ा? हम बतलाते हैं, जैनमतके सत लोग पर्णालस अर्थात् पत्तों के झोपड़ों में रहा करते थे इसलिए तो पहिला नाम पड़ा, चुकि वह देवताओंका के वास की जगह थी इसलिये दूसरा नाम पड़ा"

इसी प्रकार पृष्ठ २१ पर यूनानी शब्द देते हुये एक शब्द Kiuthuus लिखा है जिसका अर्थ "पूजा, जैनमतके स्नान कराने की रीति" दिया है ।

अफरीका (Africa)

अब हम देखते हैं कि जैनधर्म अफरीका में भी फैला हुअ था वा नहीं। इसके लिए भी उक्त पुस्तक ' हिन्दुस्नान कदीम साक्षी है। इसके पृष्ठ ४२ पर इस प्रकार लिखा है—:

" जिस प्रकार यूनान मे हमने साबित किया कि, हिन्दुस्तान के समानवाचिक (हमनाम) शहर और पर्वत विद्यमान है इसी प्रकार मिश्र देश में जानेवाले भाई भी अपने प्यारे वतन (जन्म-भूमि) को नहीं भूलें। उन्होंने भी वहीं एक पर्वत का नाम Meroe (सुमेरु) रक्खा। दूसरे पर्वत का नाम Caela (कैलाश) रक्खा। एक झील का नाम वहां मनसा (Menza Lake) मौजूद है। एक शहर का नाम भी On ग्राम है। एक सूबा Gurna है जिसमें मंदिर और मूर्तियां गिरनार जैसी आज तक मिलती हैं जो अवश्य वहां के ही लोगोंने बसाया होगा " इत्यादि ॥

ऊपर जिस गिरनार का वर्णन आया है वह जैनियोंका प्रसिद्ध तीर्थ जूनागढ के पास गुजरात में है जहां से २२ वें तीर्थंकर श्री-नेमिनाथ स्वामी मोक्ष को पधारे थे।

आगे चलकर इसी पुस्तक के पृष्ठ ४३ पर इस प्रकार लिखा है:—

" कुछ शहरों पर ही मौकूफ नहीं। मिश्र के बहुत से राजाओं-के नाम खालिस संस्कृत भाषा के है; जैसे (Tirtheka) तीर्थं-कर जैनी फिरके का पुजारी। "

और देखिये इसी पुस्तक के कर्त्ता पृष्ठ ४५ पर क्या लिखते है:—

" जैनमत की पुस्तकों में बरबर देश का नाम कई जगह लिखा है और उनके मशहूर अवतार ऋषभदेव भी दूसरे मुल्क

ने आये हुये लिखे है। जैनमूर्तियों के वाल भी घूघर वाले, डाढ़ी मूछ भी कतरी हुई और होंठ मोटेसे होते है। इसलिये मिश्र से कुछ सम्वन्व होना निश्चय है। जैनधर्मका मिश्र देशसे सम्वन्ध ओरियटल (Oriental) पत्र वावत् अक्टूवर १८०२ के "भारतवर्ष मे सवसे पुरानी इमारत" शीर्षक लेख से भी विदित होता है, जो उक्त पत्रके पृष्ठ २३ व २४ पर छपा था और जिसकी नकल नीचे दी जाती है:—

In connection with the questions raised by recent discoveries and the theories based on them regarding the home of the Aryan, it is worth while drawing attention again to the Jain Stupa at Mathura which was referred to by Mr. Manmohan Chakravarti, in a letter published by us the other day. The Stupa contains Votive tablets and inscriptions dated at the very latest 150 B. C., Jain books indicate that the Stupa was "built by the Gods." In other its origin is lost in the mists of antiquity. But there is a certain amount of evidence to show that it was built about 600 B. C. It is, therefore the oldest known building in India. The greater number of images found represent Mahavira, the last of the 24 Jain saints, who died about half a century before Buddha. Dealing with the Mathura discoveries that year we pointed out that the dress and ornaments of the figures were *exceedingly Egyptian* in style.

It was also shown that many of the symbols by which each Jain saint is identified were Egyptian.

But apart from the Mathura discoveries a comparative study of the ancient Indian and Egyptian religions brings to light the following very striking facts. The Jains to this day call themselves the 'sons of Ka' whom they identify with the Hindu God, Prajapati, 'the son of the waters.' But the Kushaits of Egypt also worshipped a son of the waters whom they called Pate, &c, &c.

अर्थ—आर्यों के घर के विषय में जो हाल मे अनुसंधान हुआ है और उसपर जो कल्पनायें कायम की गई है उनके सम्बन्ध में मथुरा के जैन स्तूप की तरफ फिर ध्यान को आकर्षित करना आवश्यक है। इस स्तूप का मिस्टर मनमोहन चक्रवर्ती ने अपनी एक चिट्ठी में वर्णन किया था जिसको हम पहिले प्रकाशित कर चुके है। स्तूप पर प्रतिज्ञा पूर्वक दिये हुये दान की तख्तों और कुतबे है। जो ज्यादः ईस्वी सन से १५० वर्ष पहिले के हैं जैन शास्त्रोंमें लिखा है कि इस स्तूप को देवताओ ने बनाया था जिसका तात्पर्य यह हैं कि इसके बनने का समय प्राचीनता के अन्धकार में छिपा हुआ है। परंतु इस बातको प्रगट करने के लिए हमारे पास प्रमाण है कि प्राय: यह ईस्वी सन् से ६०० पूर्व बना था इस कारण यह भारतवर्ष में सबसे पुरानी इमारत है। बहुदा मूर्तिया जो मिलती है वे महावीर स्वामी की है। जो २४ जैन तीर्थंकरों में से अंतिम तीर्थंकर थे और जो बुद्ध से करीब आधी सदी पहिले मोक्ष गये थे। उस वर्ष मथुरा का वर्णन करते हुये हमने यह लिखा था कि यह आश्चर्य की बात है कि मूर्तियों के वस्त्र और आभूषण आकार में मिश्र देशवालोंके जैसे हैं और

यह भी प्रकट किया था कि वहुत से चिन्ह जिनसे तीर्थंकर पहचाने जाते है मिश्र देशवालों के है। परंतु मथुरा की तहकीकात को छोड़कर यदि प्राचीन भारतवर्ष और मिश्र देश के धर्मोंका मुकावला किया जाय तो निम्न लिखित अत्यंत आश्चर्यजनक वातें मालूम होती हैं। जैनी इस समय तक अपने आपको "का के पुत्र कहते है जिसको वह हिन्दुओं का देवता प्रजापति अर्थात् "जलपुत्र" वनाते है; परंतु मिश्र देश के Kushaites (कुशाइट) लोग भी जलपुत्र की पूजा करते थे जिसका नाम उन्होंने पाति रक्खा था इत्यादि॥"

अत में मैं जैनमत के अफ्रीका (Africa) में फैलने की एक और साक्षी देकर इस रिसाले को समाप्त करता हूं। वह साक्षी पं० लेखराम आर्य मुसाफिरकृत "रिसाला जेहाद" की है। इसके पृष्ठ २५ पर एक नकशा उन देशों का दिया हुआ है कि जिनमें मुसलमानों का मत फैला। उसी नक्शे की कैफियत के खाने में देशों के नाम के सामने अन्य धर्मों के नाम भी लिखे हुये है, जो वहा किसी समय में उन देशों में फैले थे। उसमें मिश्र और नाटाल देशों के सामने जैनी भी लिखे हैं।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट तौर पर सिद्ध होता है कि जैनधर्म किसी समय में एशिया, यूरुप, अफ्रीका तीनों महाद्वीपों में फैला हुआ था। और अपने सत्य उपदेश रूपी जलसे मनुष्यों की मिथ्यात्व रूपी अग्नि को शात करता था॥

---

(११)

स्वर्गीय विद्वान् गांधी वीरचन्द राघवजी बी. ए. के चिकागो (अमेरिका) में दिये हुए व्याख्यानका अनुवाद।

मैंने अपनी इस व्याख्यानमालाका अन्तिम विषय जैनीजम (जैनधर्म) निश्चय किया है। इसमें मैं जैनधर्म सम्बन्धी आवश्यक विषयोंका समावेश संक्षेपमें करूंगाः—

किसी भी तत्वविद्या (फिलासोफी) का अथवा धर्मका अभ्यास उसकी सब ओरोंसे होना चाहिये। और किसी भी धर्म तथा फिलासोफीका वास्तविक आशय समझ लेनेके लिये आगे कही हुई चार बातें अवश्य जानना चाहिये:—

किसी भी धर्म वा फिलासोफीका सृष्टिकी उत्पत्तिके विषयमें क्या मत है? ईश्वरके विषयमें क्या विचार है? एक शरीर छोड़नेपर आत्माकी क्या दशा होती है? और आत्मजीवनके नियम क्या २ हैं?

इन प्रश्नोंके उत्तर हमको किसी भी धर्म वा फिलासोफीके वास्तविक स्वरूपकी जानकारी करा देंगे। हमारे देशमें धर्म फिलासोफीसे भिन्न नहीं है, और इसी प्रकारसे धर्म और फिलासोफी सायन्ससे कुछ भेद नहीं रखती है। परन्तु हम यह भी नहीं कहते हैं कि, सायन्स अथवा धार्मिक शास्त्र दोनों एक ही रूप हैं। हम धर्मके लिये अंग्रेजीके 'रिलीजन' शब्दका प्रयोग नहीं करते हैं। क्योंकि

---

१ गांधी महाशयने अमेरिकामें बहुतसे व्याख्यान दिये थे, उनमें यह अन्तिम व्याख्यान था। २ भारत वर्षमें.

अंग्रेजीमें ' रिलीजन ' का व्युत्पत्यर्थ ' फिरसे बँधना ' (बाइन्डिंग बैक) होता है और उससे वह रिलीजन (धर्म) मनुष्यको परतंत्रताके विचारकी ओर आकर्षित करता है। इतनाही नहीं, किन्तु वह हमको यह भी बतलाता है कि, उस परतंत्रतामें ही मनुष्योंके तथा दूसरे प्राणियोंके सुखका समावेश है। अर्थात् सान्तजीवको अनन्त ईश्वरके आधीन रहना यही उसके लिये कल्याणकारी है। परन्तु जैनी इस विषयमें कुछ जुदे ही विचार प्रगट करते हैं। वे कहते हैं कि, **आनन्द परतंत्रतामें नहीं, किन्तु स्वतंत्रतामें ही है**। सांसारिक जीवनमें परतंत्रता है। और वह (सांसारिकजीवन) धर्मका एक अंग है। इसलिये यदि हम अंग्रेजी रिलीजियन शब्दका प्रयोग सांसारिक जीवनके लिये करें, तो किसी प्रकारसे कर सकते है। परन्तु जो जीवन इस वर्तमान जीवनकी अपेक्षा बहुत ही ऊंचा है और जिसमें आत्मा बंधन अथवा दुःखद पापकर्मोंसे सर्वथा मुक्त है उसमें रिलीजियन शब्द घटित नहीं हो सकता है; क्योंकि आत्मा अपनी ऊंचीसे ऊंची स्थितिमें जब कि, वह स्वयं परमात्मा है मुक्त अथवा स्वतंत्र है। हमारे जिन धर्मका यह रहस्य है। इसलिये उसमें सबसे पहला विचार यह उपस्थित होता है कि—

विश्व क्या है ?

इस विश्वका आदि है कि नहीं ? वह नित्य (अविनाशी) है कि क्षणिक है ? यद्यपि इस विषयमें अनेक मतभेद है परन्तु इस व्याख्यानमें मैं उनका विचार नहीं करूंगा। मैं तो केवल जैन फिलासोफी-

(११)

स्वर्गीय विद्वान् गांधी वीरचन्द राघवजी बी. ए. के चिकागो (अमेरिका) में दिये हुए

व्याख्यानका अनुवाद ।

मैंने अपनी इस व्याख्यानमालाका अन्तिम विषय जैनीजम (जैनधर्म) निश्चय किया है । इसमें मै जैनधर्म सम्बन्धी आवश्यक विषयोंका समावेश संक्षेपमें करूंगा:—

किसी भी तत्वविद्या (फिलासोफी) का अथवा धर्मका अभ्यास उसकी सब ओरोंसे होना चाहिये । और किसी भी धर्म तथा फिला सोफीका वास्तविक आशय समझ लेनेके लिये आगे कही हुई चार बातें अवश्य जानना चाहिये:—

किसी भी धर्म वा फिलासोफीका सृष्टिकी उत्पत्तिके विषयमें क्या मत है ? ईश्वरके विषयमें क्या विचार है ? एक शरीर छोडनेपर आत्माकी क्या दशा होती है ? और आत्मजीवनके नियम क्या २ हैं ?

इन प्रश्नोंके उत्तर हमको किसी भी धर्म वा फिलासोफीके वास्तविक स्वरूपकी जानकारी करा देंगे । हमारे देशमें धर्म फिलासोफीसे भिन्न नहीं है, और इसी प्रकारसे धर्म और फिलासोफी सायन्ससे कुछ भेद नहीं रखती है । परन्तु हम यह भी नहीं कहते हैं कि, सायन्स अथवा धार्मिक शास्त्र दोनों एक ही रूप हैं । हम धर्मके लिये अंग्रेजके ' रिलीजन ' शब्दका प्रयोग नहीं करते हैं । क्योंकि

---

१ गांधी महाशयने अमेरिकामें बहुतसे व्याख्यान दिये थे, उनमें यह अन्तिम व्याख्यान था । २ भारत वर्षमें.

अंग्रेजीमें 'रिलीजन' का व्युत्पत्यर्थ 'फिरसे बंधना' (बाइन्डिंग बैक) होता है और उससे वह रिलीजन (धर्म) मनुष्यको परतंत्रताके विचारकी ओर आकर्षित करता है। इतनाही नहीं, किन्तु वह हमको यह भी बतलाता है कि, उस परतंत्रतामें ही मनुष्योंके तथा दूसरे प्राणियोंके सुखका समावेश है। अर्थात् सान्तजीवको अनन्त ईश्वरके आधीन रहना यही उसके लिये कल्याणकारी है। परन्तु जैनी इस विषयमें कुछ जुदे ही विचार प्रगट करते हैं। वे कहते हैं कि, **आनन्द परतंत्रतामें नहीं, किन्तु स्वतंत्रतामें ही है।** सांसारिक जीवनमें परतंत्रता है। और वह (सांसारिकजीवन) धर्मका एक अंग है। इसलिये यदि हम अंग्रेजी रिलीजियन शब्दका प्रयोग सांसारिक जीवनके लिये करें, तो किसी प्रकारसे कर सकते है। परन्तु जो जीवन इस वर्तमान जीवनकी अपेक्षा बहुत ही ऊंचा है और जिसमें आत्मा बंधन अथवा दुःखद पापकर्मोंसे सर्वथा मुक्त है उसमें रिलीजियन शब्द घटित नहीं हो सकता है; क्योंकि आत्मा अपनी ऊंचीसे ऊंची स्थितिमें जब कि, वह स्वयं परमात्मा है मुक्त अथवा **स्वतंत्र** है। हमारे जिन धर्मका यह रहस्य है। इसलिये उसमें सबसे पहला विचार यह उपस्थित होता है कि—

विश्व क्या है?

इस विश्वका आदि है कि नहीं? वह नित्य (अविनाशी) है कि क्षणिक है? यद्यपि इस विषयमें अनेक मतभेद है परन्तु इस व्याख्यानमें मैं उनका विचार नहीं करूंगा। मैं तो केवल जैन फिलासोफी-

का सिद्धान्त इस विषयमें क्या है उसे आपके समक्षमें निवेदन करूंगा। मेरी समझमें किसी भी सिद्धान्तका वा मतका ज्ञान जबतक उसकी सब ओरसे जांच नहीं कर ली जावे, नहीं हो सकता है। इस विचार-को हम अनेकानेक आकृतियों वा चिन्होंसे प्रदर्शित करते है। और वैसा करतेहुए हमने इस सिद्धान्तको हाथी और सात अंधोंकी कहावतसे घटित किया है। ये सात अन्धे यह जानना चाहते थे कि, हाथी कैसा होता है ? आर यह जाननेके लिये उन्होने उस पशुके जुदे २ अवयव टटोलकर हाथीका आकार निश्चय किया था, जिसके कि वे अपने २ निश्चयमें हठवादी अथवा अंधे हो गये थे । इस लिये यदि आपको सत्य जाननेकी इच्छा हो तो जिस प्रकारसे हाथीका आकार जाननेके लिये उसे सब ओरसे देखनेकी आवश्य-कृता होती है उसी प्रकारसे सत्यकी शोधके लिये प्रत्येक विषयको सब ओरसे देखना चाहिये। इसलिये हम कहते है किः—

यदि एक प्रकारसे देखा जाय, तो जगत् अनादि है और दूसरे प्रकारसे देखा जाय तो अनादि नहीं है । यदि हम समूचे विश्वको लेवें, तो वह अनादि हैं। क्योंकि वह सारी वस्तु-ओंका समूह है। यह समूह प्रत्येक क्षणमें वे के वे परमाणु धारण किये रहता है, इसीलिये समूह रूपमें वह अनादि है। परन्तु उस समूहके कई भाग (स्कन्ध) है उनमें कितने ही परमाणु हैं, और उन सबकी जुदे २ समयमें जुदी २ हालतें होती है। उसका प्रत्येक भाग हरसमय एकही हालतमें नहीं रहता है । उसमें फेरफार हुआ करता है। क्योंकि प्रत्येक आकारका नाश होता है, और

नवीन आकारकी उत्पत्ति होती है। इसलिये यदि विश्वको हम इस अपेक्षासे देखें तो वह अनादि नहीं है।

" पहले कुछ नहीं था, उसमेंसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई " ऐसे विचारके लिये इस जैन फिलासोफीमे स्थान नहीं है। और यदि सच पूछो तो यह विचार किसी भी सत्य विचारशील प्रजाने स्वीकार नहीं किया है। जो लोग सृष्टिकी उत्पत्ति माननेवाले है, वे भी इस विचारसे नहीं, किन्तु दूसरीही अपेक्षासे दूसरी ही रीतिसे इस बातको मानते हैं। कुछ नहीं था, शून्य था तो उसमेंसे सृष्टि कहांसे आई ? कोई वस्तु है, कोई पदार्थ है, उसीमेंसे यह प्रगट हुई है, रची गई है, ऐसा कहते हैं। इसमें इतनी ही बातें समझ लेनेकी है, कि पदार्थमें केवल कोई अवस्था (हालत पर्याय) उत्पन्न होती है (पदार्थ उत्पन्न नहीं होता है)। यह पुस्तक किसी अपेक्षासे बनाई गई है। क्योंकि इसमे जो परमाणु है, वे इसके बननेके पहले जुदी २ हालतमें थे, पीछेसे संग्रह किये गये हैं, इकट्ठे किये गये है। अर्थात् इस पुस्तकका आकार सृजित हुआ है। इसलिये इसकी आदि थी और अन्त भी आवेगा। इसी प्रकारसे प्रत्येक जड पदार्थकी आकृतिके विषयमें समझना चाहिये। चाहे वह आकृति थोड़े ही क्षण तक रहे चाहे सैकडों वर्षोंतक रहे। जहां आदि है वहां अन्त अवश्य आवेगा। हम कहा करते है कि, हमारे आसपास कितनीही (forces) चलवती शक्तियां काम कर रही है और उन शक्तियोंमें ही ध्रौव्य और नाश ये दो स्वभाव हैं। ये सारी शक्तिया अथवा बल हममें और हमारे आसपास हर समय काम किया करते हैं। बस जैनी इन

सारी शक्तियोंके समूहको ही **ईश्वर** कहते हैं । **ओम्** नामक प्रणवसे भी इसी **ब्रह्मका** ज्ञान होता है । इस शब्दका प्रथम उच्चार उत्पत्तिका दूसरा स्थिति [ध्रौव्य] का और तीसरा नाशका विचार प्रदर्शित करता हैं । विश्वकी ये सारी शक्तियांसमूहरूपसे देखी जावें, तो कितनी ही खास २ नियमोंके आधीन हैं । यदि वे नियम नियत है। उनमें कुछ रद बदल नहीं हो सकती है, तो फिर लोग क्यों उनके पैर पड़ते हैं? और क्यों इस शक्तिसमूहको देव अथवा ईश्वर मानते हैं ? । इसका उत्तर यह है कि, इस विचारके प्रारंभमें बुरा करनेकी शक्तिका विचार हमेशासे लग रहा है । अर्थात् लोग समझ रहे है कि, ये शक्तियां हमारा अकल्याण कर सकती है, इसलिये इन्हें मानना चाहिये। जब हिंदुस्थानमें पहले पहले रेल जारी हुई थी, तब अज्ञानी लोग यह नहीं समझ सके थे कि वह क्या है ? जिन्होंने अपनी सारी जिन्दगीमें यह नहीं देखा था कि, गाड़ी अथवा रथ बिना किसी बैल अथवा घोड़ा आदि प्राणीके भी चल सकते है, उन्होंने समझा कि, इंजिनमें कोई देव वा देवी जरूर हैं जो उसे चलाता है । उनमें सैकड़ों तो ऐसे थे, जो समझना तो ठीक ही है । रेलगाड़ीके पैर भी पड़ते थे । इस समय भी हिंदुस्थानके बहुतसे जंगली लोगोंमें यह विचार पहलेके समान प्रचलित है । इसलिये यह संभव हो सकता है कि, हमने अपनी आरंभकी स्थितिमें ऐसे किसी पुरुषकी धारणा की होगी और उसके पश्चात् उस विचारमें होते होते यहांतक वृद्धि हुई होगी कि, हम अपने उन विचारोंको चित्राकृतिका स्वरूप देने लगे होंगे और इसके पश्चात्

ह रूप दूसरोंको भी स्पष्ट रीतिसे समझमें आवे, ऐसे बनाने लगे होंगे। बहुतही प्राचीन कालमें वर्षा नहीं थी, परन्तु वर्षाका एक देव था, गड़गडाहट नहीं थी परन्तु गड़गाड़हटका एक देव था, और इस प्रकार इन प्राकृतिक दृश्योंको पुरुषत्व वा देवत्व प्राप्त होता था और उन शक्तियोंको लोग किसी जीवित पुरुषके रूपमें मानने लगते थे। लोगोंका ख्याल था कि जिस प्रकार कितने एक गृहोंमें सजीव व्यक्तियां होती है, उसी प्रकारसे ये शक्तियां भी सजीव हो सकती हैं।

परंतु ये शक्तियां स्वयं कोई जीव नहीं है, ऐसा होनेपरभी प्रारंभमें यह विचार जरूर रहा होगा, ऐसा प्रगट कर रहीं हैं। इन शक्तियोंके सृजन करनेवाले (रक्षक) रक्षा करनेवाले और (नाशक) नाश करने वाले ऐसे तीन भेद भी किये गये है ऐसा जान पड़ता है, और तत्पश्चात् इन्हीं तीन शक्तियोंको कुछ महत् शक्तियोंका भाग समझ करके उसका हिन्दुओंने **ब्रह्मा विष्णु** और **महेश** नाम रक्खा है ऐसा भास होता है। वास्तवमें यहां जो ' **सृजन** ' शब्द दिया है, वह अंग्रेजी के ' Emanation ' शब्दका वाचक है, जिसका कि अर्थ ' किसी एक पदार्थमें से निकला हुआ ' अथवा 'उसी पदार्थका विस्तार ' होता है। जो जिस जिस आकारका है, उसके उस उस आकारकी रक्षा करनेमें **रक्षक** शब्दका और उस आकार वा आकृतिके क्षय करनेमें **नाशक** शब्दका प्रयोग किया गया है।

इंद्रियोंसे जड़ पदार्थके विषयमें बहुत कुछ बातें मालूम होती हैं। जड पदार्थमें जो आकर्षण, स्नेहाकर्षण (मग्नेटीजम) विद्युत,

गुरुत्वाकर्षण आदि शक्तियां होती है, वेभी जडही होना चाहिये क्योंकि जड़की शक्ति चैतन्य नहीं हो सकती है। इन शक्तियोंको ईश्वर के सदृश बनना यह विचार तो अतिशयही जडवादवाला है। इसलिये ईश्वर अथवा ईश्वर सरीखा कोई पुरुष है, इस विचारको जैनी अपने पास भी नहीं फटकने देते हैं। इतनेपर भी वे इन शक्तियोंका अस्तित्व स्वीकार करते है और कहते है कि, ये शक्तिया सर्वत्र मालूम होती है परन्तु वे कई एक खास नियमोंके आधीन हैं और उनके बीचमें कोई पुरुष अथवा ईश्वर नहीं पड सकता है। इतनाही नहीं, परन्तु वह कुछ असर भी नहीं कर सकता है। ये शक्तियां बुद्धिपूर्वक हमारा कुछ भला बुरा भी नहीं कर सकती है। उनके विषयमें यह कहना कि, वे हमपर असर करती है, यह तो केवल शक्तियोंके कानूनके विषयमें जिसके कि वे आधीन हैं अज्ञानता प्रगट करना है। इन शक्तियोंको हम द्रव्य (Substance) कहते हैं। जड़ पदार्थोंमें असंख्य गुण और स्वभाव होते है और वे जुदे २ समयमें जुदी २ रीतिसे प्रगट होते है।

हम अपना विशेष ज्ञान प्रगट किये विना नहीं जान सकते है कि जड प्रकृतिमें कौन २ शक्तियां छुपी हुई है। इससे कोईभी नवीन वस्तु प्रगट होती है तो हम दिङ्मूढ़ हो जाते है। यदि कुछ हमें अचरजमें डालनेवाली घटना होती है, तो हम उसे किसी देवकी करतूत समझ बैठते है। परन्तु ज्योंही हम शास्त्रीय सिद्धान्तोंको समझते हैं, त्योंही सारी नवीनता फिसल जाती है और वह इतनी सीधी-साधी बात मालूम होने लगती है, जैसी कि सूर्यके हर

रोज उदय होनेकी और अस्त होनेकी बात है। हजारों वर्ष पहले प्रकृतिके जुदे २ दृश्य जुदे २ देशोंमें देव और देवियोंके काम समझे जाते थे। परन्तु जब हम शास्त्रीय विद्या अर्थात् सायन्सको समझने लगते हैं, तब ये दृश्य बिलकुल सीधे साधे जान पडते है। यह विचार पलायन कर जाता है कि, वे बड़े बड़े दैवी शक्ति सम्पन्न पुरुष है।

जैनियोंका ईश्वर क्या है?

तब ऐसा यदि आप पूछेंगे, तो उसके उत्तरमें मै जो कुछ ऊपर कह गया हूं, उससे आपके हृदयमें यह तर्क तो अवश्य उठी होगी कि, 'ईश्वर क्या नहीं है?' परन्तु अब मैं आपसे कहूंगा कि, ईश्वर क्या है? इतना तो आपने समझ लिया कि, जड (Matter) की अपेक्षा अर्थात् प्रकृतिकी अपेक्षा कोई दूसरा पदार्थ भी है। आप जानते हैं कि, अपना शरीर बहुतसे स्वभावों और शक्तियोको प्रगट करता है। ये स्वभाव साधारण जड पदार्थोंमें नहीं मिलते हैं और यह दूसरा पदार्थ जो इन स्वभावों और शक्तियोंको प्रगट कर रहा है मरणके समय शरीरमेंसे बिदा हो जाता है। हम जानते नहीं हैं कि, वह कहा जाता है। हां, यह बात हम अच्छी तरहसे जानते है कि, जब वह शरीरमें होता है तब शरीरकी शक्तिया शरीरमें, जब वह नहीं होता है, तब जैसी दिखती है, उसकी अपेक्षा जुदे प्रकारकी होतीं है। उस समयही शरीर प्रकृतिकी कितनीही शक्तियोंके साथ समतामें आसकता है। वह दूसरा जो कुछ है, उसको हम बडेसे बडा तत्त्व समझते है और सर्व चेतन प्राणियोंमें वही तत्त्व है ऐसा हम मानते हैं। इस तत्त्वको जो प्रत्येक जीवमें

सामान्य है हम देवतत्त्व कहते हैं। हममेंसे किसीमें वह तत्त्व जैसा कि जगत्के महापुरुषोंमें पूर्ण विकासभावको प्राप्त होता है वैसा विकसित नहीं हुआ है, और इसलिये उन महापुरुषोंको हम दैवी पुरुष कहते है। अर्थात् सर्व जीवोंमें लोकके अनुषंगसे रहनेवाले दैवीतत्त्वको देखते हुए जो एकत्र विचार उत्पन्न होता है वह ईश्वर है। जड जगत्में और आध्यात्मिक जगत्में जो बहुत सी सामर्थ्य (Energies) शक्तियां हैं उन शक्तियोंके संग्रहको प्रकृति कहते है, उसमेंसे जड़ शक्तियोंको तो हम जुदी करके एकत्र करते हैं। और आध्यात्मिक शक्तियोंको एकत्र करके परमात्मा अथवा ईश्वर ऐसा नाम देते हैं।

इस तरह हम जड़ और जड़ शक्तियोसे चैतन्य शक्तिको जुदा करते हैं। इन चैतन्य शक्तियोंको अर्थात् आध्यात्मिक शक्तियोंको ही हम भजते है। एक जैन श्लोकमें कहा है कि, "मै उस आध्यात्मिक बल या वीर्यको नमस्कार करतां हूं कि, जो हमको मोक्ष मार्गपर चलनेका मुख्य कारण है, जो परमतत्त्व है, और सर्वज्ञ है। मै उसे इसलिये नमस्कार करता हूं कि मुझे उस बल तथा वीर्य सरीखा होना है।" इसलिये जहां जैन प्रार्थनाकी रीति बतलाई जाती है वहां ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उससे किसी व्यक्ति के पाससे अथवा आध्यात्मिक स्वाभाविक गुणोंके पाससे कुछ प्राप्त करना है। परन्तु उसी सरीखा होना है। कुछ ऐसा नहीं है कि, वह दैवी व्यक्ति किसी चमत्कारसे हमको अपने सरीखा कर देगी। परन्तु जो भावना हमारे चक्षुओंके समक्ष उपस्थित की जाती है,

उस भावनाके अनुसार यथार्थ वर्ताव करनेसे हम अपनेमें फेरफार करनेको समर्थ होते है और उससे हमारा स्वतः पुनर्जन्म हो जाता है। और उससे कोई ऐसे जीव हो जाते हैं, जिसका कि स्वरूप देवी तत्त्वरूपी ही होता है । परमात्मा अथवा ईश्वरके विषयमें यही हमारा विचार है, इसलिये ही हम परमात्माको भजते है। ऐसी इच्छासे नहीं, कि वे हमको कुछ देंगे; ऐसी आशासे नहीं कि, वे हमको प्रसन्न करेंगे, ऐसे भरोसेसे नहीं कि, ऐसा करनेसे हमको कुछ खास लाभ होगा. स्वार्थीपनका जरा भी विचार नहीं है । यह तो केवल ऐसा है कि, उच्चगुणोंके लिये उच्चगुणो अथवा सद्गुणोंका वर्ताव करना और उसमें कोई भी दूसरा हेतु नहीं रखना।

आत्मासम्बन्धी विचार।

जिस पदार्थका अस्तित्व होता है, उसकी कुछ न कुछ आकृति होनी चाहिये और इन्द्रियोंसे उसका ज्ञान भी होना चाहिये यह हम सबका साधारण अनुभव है । परन्तु वास्तविक विचार किया जाय, तो मालूम होगा कि, यह अपने जीवके केवल इन्द्रिय गोचर भागकाही अनुभव है और वह केवल मनुष्य व्यक्तिका छोटेसे छोटा भाग है। केवल इस अनुभवसे ही हम अनुमान बाँधते है और निश्चय करते हैं कि यह अनुभव सब पदार्थोंमें लगाना चाहिये । इस विश्वमें ऐसे भी पदार्थ है कि जो इन्द्रियोंके द्वारा जाने ही नहीं जा सकते है। बहुतसे ऐसे सूक्ष्म द्रव्य हैं और व्यक्ति है कि जो केवल ज्ञानसे अथवा आत्मासे ही जाने जा सकते हैं । ऐसी वस्तुएं अथवा द्रव्यें देखी नहीं जा सकती, सुनीं नही जा सकतीं, चखी नहीं जा सकतीं,

सूंघी नहीं जा सकतीं, इतना ही नहीं किन्तु छुई भी नहीं जा सकती है। ऐसे पदार्थोंके रहनेके लिये कुछ स्थानकी अपेक्षा नहीं है, अथवा उसका कुछ स्पर्श हो सके ऐसा भी होनेकी जरूरत नहीं है। इस प्रकार चाहे उनमें आकार न हो तो भी, उनका आस्तित्व हो सकता है। वे वस्तुएँ किसी भी आकारमें हों, परन्तु यह जरूरत नहीं है कि, जिस आकारके शब्दरूप वगैरह होते है, उस आकारमें उनका अस्तित्व हो।

ऐसी तो एक भी वस्तु नहीं मिल सकती है कि जिसमे जडके लक्षण हो और चैतन्यके भी लक्षण हों। क्योंकि जड़के लक्षण चेतनके लक्षणोंसे बिलकुल उलटे होते हैं। हां एकके पेटेमें दूसरी वस्तु हो सकती है। परन्तु इससे एक वस्तु दूसरी नहीं हो जाती है। जब आत्माका लक्षण बिलकुल जुदे प्रकारका है, तब फिर वह जडमें कैसे रह सकती है? हम अपने निजी अनुभवसे जानते है; कि यदि हमें अपने आसपासकी ऐसी वस्तुओंके बीचमें जो कि अपने सरीखी लक्षणोंवाली नहीं है, रहना पड़े तो लोग समझेंगे कि, जब आसपासकी वस्तुओंके साथ इनका कुछ सम्बन्ध नहीं है, तब उनके बीचमे रहना जरूरी होनेका कुछ कारण होना चाहिये। परन्तु वह कारण बुद्धिगत होना चाहिये, जड़ वस्तुमें नहीं होना चाहिये। क्योंकि बुद्धि कुछ जड़ वस्तुमें से उत्पन्न नहीं होती है। कोई भी जड़ वस्तु अपनेमें बुद्धि है, ऐसा सुबूत अभीतक नहीं दे सकी है। जब उसमें सत्व (जीव) होगा, तभी वह कह सकेगी कि बुद्धि है। सत्वके विना बुद्धि नहीं हो सकती है।

यह तो हमको विश्वास है कि बुद्धि पर जड वस्तुका असर होता है। परन्तु कुछ जड़ वस्तुमेंसे बुद्धि नहीं निकलती है. जिस समय मनुष्य पूर्ण रीतिसे सचेत सावधान होता है, उस समय यदि उसे कोई नसेकी चीज पिला दी जाती है, तो उससे उसकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकती है। इस जड वस्तुका असर चेतन वस्तुआत्मा पर क्यों होता है? जीव स्वयं यह समझता है कि, जो यह देह है, वही मैं हू और जड देहको जो कुछ होता है, वह आपको होता है। यहा क्रिश्चियन शास्त्रवेत्ता, रसायनशास्त्रवेत्ता और जैनतत्त्वज्ञानी तनोंका एकमत हो जाता है। जबतक आत्मा यह विचारता है कि "जो देह है वही मैं हूं" तबतक आत्मा यह होता है, वह आपको हुवा है ऐसा समझता है। परन्तु यदि एक क्षणभर आत्मा यह विचार करता है कि, "मैं और देह दोनों जुदे २ पदार्थ है, देह तो सर्वथा पर है," तो फिर दुःखका तो नाम भी अस्तित्वमें नहीं रहता है। यदि कभी अपना ध्यान दूसरी ओर दौड जाता है तो हम अपने साम्हने जो कुछ होता है, उसे भी नहीं जान सकते हैं। इससे मालूम होता है कि, आप शरीरकी अपेक्षा कुछ उच्च श्रेणीका है। तो भी साधारण रीतिसे शरीरका असर आत्मापर होता है। इससे आत्मिक और शारीरिक नियमोंका हमें अभ्यास करना चाहिये कि जिनके अभ्याससे छोटी वस्तुओंकी अपेक्षा हम ऊंचे चढ़ सकें और उस मोक्षके मार्गमें आगे वढे। कि जिसे आत्मा प्राप्त करना चाहता है, अवश्य ही जड़वस्तुमें भी शक्ति है। परन्तु वह आत्माकी अपेक्षा वहुत ही न्यून और निम्न प्रकारकी है. यदि जड़में कोई शक्ति न हो, तो उसका असर भी आत्मापर नहीं

हो सकता है। क्योंकि जब कुछ शक्ति हीन तो फिर असर कौ करे ? शरीरकी शक्ति जिसका कि हम निरन्तर अनुभव करते हैं व उसके भीतर जो आत्मा है, उसके कारणसे है। जड़ वस्तुमें शक्ति इसके उदाहरण पहले कहे हुए संयोगी तत्त्व लोहचुम्बक वगैर समझना चाहिये। ये जड वस्तुएं आत्माके विना भी स्वयं काम व सकती हैं। यदि पृथ्वीके आसपास चन्द्रमा घूमता हो तो ऐसा स झना चाहिये कि चन्द्रमा और पृथ्वीमें कोई स्वाभाविक शक्ति है

ऊपर जो बहुतसी बातें कही गई हैं, उनका सार केवल इत ही है कि, इन जड़ वस्तुओंकी शक्ति आत्मापर असर करती है इसका कारण यही है कि आत्मा स्वयं उन शक्तियोंके आधीन ह नेके लिये तयार रहता है और प्रसन्न होता है। यदि वह स्वयं ऐ विश्वास करे कि, मुझपर तो किसी वस्तुका असर होना ही नह चाहिये तो फिर उसके ऊपर कुछ भी असर नहीं होगा। आत्माव जब इस प्रकारका स्वभाव है तो अब उसका मूल क्या है, यह देखन चाहिये। क्योंकि प्रत्येक वस्तुके दोनों पार्श्वोंकी जांच करनी चाहिये वस्तुकी और उसके स्वरूपकी। यदि हम अपने आत्माकी स्थिति अथव हालतके विषयमें विचार करें तो उसकी उत्पत्ति भी है और नाश भ है। मनुष्य देहमें आत्माकी स्थितिका विचार किया जाय तो उसके जन्मके समय इस स्थितिका प्रारंभ और मरणके समय नाश समझना चाहिये। परन्तु यह प्रारंभ और नाश उसकी पहलेकी स्थितिका है, स्वयं वस्तुका नहीं है। आत्मा द्रव्यरूपसे तो हमेशा नित्य है परन्तु पर्यायरूपसे उसकी प्रत्येक पर्यायकी उत्पत्ति और नाश है। अब इस आत्माकी

स्थिति (पर्याय) की उत्पत्ति यह बात दिखलाती है कि, इस उत्पत्तिके पहले आत्माकी दूसरी स्थिति थी । क्योंकि वस्तु जब पहले किसी स्थितिमें हो, तब ही दूसरी स्थितिमें हो सकती है । नहीं तो उसका अस्तित्त्व ही नहीं हो सकता है । चाहे एक स्थिति हमेशा कायम नहीं रहे परन्तु वस्तु किसी न किसी स्थितिमें तो हमेशा ही रहती है । अतएव यदि अपने आत्माकी वर्तमान स्थितिकी उत्पत्ति है, तो इसके पहले भी वह किसी स्थितिमें होना चाहिये और इस स्थितिके नाशके पीछे भी कोई दूसरी स्थिति धारण करना चाहिये । इससे भविष्यकी स्थिति इस वर्तमान स्थितिका ही परिणाम है ऐसा समझना चाहिये । और जैसे भविष्यकी स्थिति वर्तमानकी स्थितिका परिणाम है । उसी प्रकारसे यह वर्त्तमान स्थिति इससे पूर्वकी स्थितिका परिणाम है । क्योंकि जो वर्तमान है वह भूतका भविष्यत ही है । तब भविष्यकी स्थितिके विषयमें भी वैसा ही है । पूर्वके कर्मोंने वर्तमान स्थिति निर्माण की है । और यदि ऐसा है, तो वर्तमानके कर्म भविष्यकी स्थिति निर्माण करेंगे ही । ये सब बातें हमको पुनर्जन्मके, सिद्धान्तपर लाती हैं । पुनर्जन्मके लिये अंग्रेजीमें रीबर्थ, रीइनकारनेशन, ट्रान्समाईग्रेशन और मेटेंमोर्फोसीस आदि शब्द है ।

रीइनकारनेशन—का अर्थ "फिरसे मांस होना" होता है । परंन्तु वास्तवमें जो जड है, वह जडही है और जो स्प्रिट अथवा चेतन है, वह चेतन—आत्मा ही है । कुछ चेतन मांस नहीं बनता है । यदि रीइनकारनेशनका अर्थ फिरसे देह धारण करना—अर्थात् मांस होना हो तो रीइनकारनेशन (पुनर्जन्म) ही नहीं हो सके । किन्तु

यदि उसका अर्थ ऐसा किया जाय कि कुछ समयके लिये मांसके अन्दर जिन्दगी तो रीइनकारनेशन हो सकता है । रीइनकारनेशनका यह भी अर्थ होता है कि, " फिर फिरसे किसी न किसी पर्यायमें जन्म लेना । "

मेटेमोर्फोसीसका अर्थ ग्रीक भाषामे केवल फेरफार (रदबदल) होता है। शरीरों और आत्माओंकी एकत्रावस्थाको प्राणी कहते हैं। यह एकत्रावस्था मनुष्यत्वमे बदल जाती है। और वही फिर किसी तीसरी वस्तु (पर्याय) में बदल जाती है। और इस तरह आगे मेटेमोर्फोसीसका यथार्थ अर्थ होता है। सोल (आत्मा) के ट्रान्सिमाइग्रेशन (जन्मान्तर) का विचार खास करके क्रिश्चियनोंमें है। मनुष्य आत्माका (पशु आदि) प्राणीके शरीरमें जाना यद्यपि जरूरी है परन्तु वास्तवमें एक वस्तुमेंसे दूसरीमें अर्थात् एक शररिमें से दूसरे शरीरमें जानेका नियम है। कुछ यही आवश्यक नहीं है कि, मनुष्य शरीरमेंसे प्राणी शरीरमेंही जाना चाहिये। मतलब जानेसे–भ्रमण करनेसे है, जावे चाहे जहां। यह बात साकारका विचार सूचित करती है। क्योंकि जबतक साकार नहीं हो जबतक कोई स्थान रहनेको नहीं चाहिये, तबतक एक स्थानसे दूसरे स्थानको गमन नहीं हो सकता है इसीसे हमारी फिलासोफीमें (तत्त्वज्ञानमें) पुनर्जन्मका (रीबर्थका) सिद्धान्त स्वीकृत है अर्थात् यह माना है कि, आत्मा एक शरीरको छोड़कर किसी दूसरे शरीरमें जन्म लेता है। और जन्मसे कुछ यह मालूम नहीं होता है कि, जिस अवस्थामें मनुष्य शरीरमें जन्म होता है, वही अवस्था प्रत्येक स्थानमें होगी।

नहीं, ऐसी अगणित स्थितिया वा पर्यायें हैं, जिनमें मनुष्य जन्म लेते हैं। बीजके पकनेमें कई महिने लगते हैं और उसके पश्चात् उसका जन्म हुआ कहलाता है। इसी प्रकारसे मनुष्य जो कुछ करता है, उसका परिपाक होता है। फिर कोई मनुष्यशक्ति उसको दूसरे गृहमें ले जाती है और इस प्रकार हम कहते है कि, जन्मकी वह दूसरी स्थिति है। इसके सिवाय गर्भ धारण करनेकी भी कुछ आवश्यकता नहीं है। कार्माण शरीरमें ही इतनी अधिक शक्तिया है कि, वह स्वय दूसरा शरीर अपने साथ २ धारण कर सकता है, मनुष्य देहमें सूक्ष्म शरीर और दूसरे प्राणियोंकी देहके सूक्ष्म शरीरों-के आकार तथा कद बारबार बदलते रहते है।

यदि हमने किसी भी जातिमें जीकर उससे विरुद्ध प्रकारके कर्म किये हों, तो यह आवश्यक है कि उन कर्मोंके अनुसार दूसरा जन्म हो। यदि किसीको मनुष्यजातिमें आना हो, तो उसे मनुष्य जाति और मनुष्यके योग्य कर्म करना चाहिये। यदि वह ऐसा नहीं करेगा किसी दूसरीही जातिके कर्म उपार्जन करेगा, तो वह जुदेही गृहोमें उत्पन्न होगा और जुदेही दृश्य धारण करेगा। इस जन्मधारणमें नर-मादाका सम्बन्ध होनाही चाहिये। इसकी जरूरत नहीं है। विना नर-मादाके सम्बन्धके भी प्राणियोका जन्म हो सकता है। जीवनकी इतनी अधिक प्रकारकी स्थितिया हैं कि, उनकी जा-नकारी केवल मनुष्यजीवनकी स्थितिका अभ्यास करनेसे नहीं हो सकती है। हम सबने केवल मनुष्य और दूसरे थोड़ेसे प्राणियोंकी स्थितिका अभ्यास किया है; जोकि उस अतिशय उच्चश्रेणीकी

सायन्सका जिसका कि हम वर्तमानमें शक्तिके अनुसार बहुत थोड़ासा अभ्यास कर सकते है एक बहुतही सूक्ष्म भाग है। ऐसी बहुतसी स्थितियां हैं कि जिनका अभ्यास करनेके लिये हम अशक्त हैं, क्योंकि, संसारमे असंख्य स्थितियां है। इसलिये एक प्रकारकी (नर-मादाके सम्बन्ध आदिकी) स्थितिका नियम सबही प्राणियोंकी स्थितिके लिये लागू नहीं हो सकता है।

हमारा अभ्यास आन्तर्दृष्टिका है। हमारे मतसे आत्मा सब कुछ यथार्थ समझनेके लिये समर्थ है, इसलिये जो ज्ञान प्राप्त हो, वह उत्तम होना चाहिये। क्योंकि सायन्सकी रीतिसे जो कठिनाइयां आती हैं, वे इस उत्कृष्ट प्रकारके ज्ञानमें नहीं आती है। सायन्टिस्ट लोग भूल करते है, परन्तु वे समझते हैं कि, हम भूल नहीं करते है। कई एक विषय जो यथार्थ नहीं होते है, उनमेसे निकाले हुए सारका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये अथवा जो विषय यथार्थ हो, उनमेंसे निकाले हुए सारका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ? हम यह नहीं कहते हैं। दृष्टिसे प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं सम्बन्धी ज्ञान-प्राप्त कहते है कि जो किया जाता है, उसमें हमेशा भूलें हुआ करती हैं । परन्तु कभी २ होती अवश्य हैं और कभी यथार्थ भी होती हैं, परन्तु हम उनपर भरोसा नहीं रख सकते है। यथार्थ ज्ञान तो उसे कह सकते हैं, जिसे आत्माने बाहिरी किसी भी वस्तुकी सहायता लिये विना प्राप्त किया हो। मोक्षके जीवका अथवा मोक्ष जिसका बहुत निकट हो उसका, अथवा मानसिक नैतिक और आत्मिक पवित्रता जिसकी पूर्ण हो गई हो और उसी समय जिसने पूर्वके प्रायः सब कर्म खपा डाले हों ऐसे जीवका ज्ञान यथार्थ ज्ञान कहला सकता है।

आत्मा जब इस स्थितिको प्राप्त करता है, तब वह सब कुछ जानता देखता है अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है। वह स्वयं सर्वदर्शीपना दिखला देता है कि आत्मा आप आपको भी देखता है। जिस दशामें आत्मा सर्वज्ञ और अनन्त सुखमय होता है, वह आत्माकी ऊचींसे ऊंची अवस्था है। क्योंकि संस्कृतमें हम ये तीन वस्तुएं देखते है **अक्षय, अक्षय, अक्षय** । परन्तु ऐसी अक्षय स्थितिवाले आत्माका हम वर्णन नहीं कर सकते है। कारण जब वर्णन करनेवाला अपनेको अपूर्ण मानता है तब वह अनन्त दशावाले आत्माका सम्पूर्ण रीतिसे किस प्रकार वर्णन कर सकता है ? इस-लिये ऐसी स्थितिवाले आत्माका हम जो वर्णन करते है, उसमें चाहे जितना अधिक कहा गया हो परन्तु वह पूर्ण नहीं होता है। हम उसमेंकी बहुत बातें छोड़ देते हैं। अपने मनमें जितने विचार उत्पन्न होते हैं, जब हम उन्हें ही ठीक २ वर्णन नहीं कर सकते है, तब आत्मा कि जिसका वीर्य और ज्ञान अनन्त होता है उसका वर्णन कैसे कर सकते है ? आत्मा और जगतकी स्थितिका जैनि-योंने इसी सिद्धान्त (पॉइन्ट) से अभ्यास किया है और इसीसे वे बहुत-ही उत्तम तत्त्व निकाल सके है। जब हम यह तत्त्वसम्बन्धी विचार करते है, तब इस देश (अमेरिका)में और दूसरे देशोंमें तथा दूसरे धर्मोंमें अन्तर यही पड़ता है कि दूसरे जो कुछ समझते है, वह ऊपर कहे हुए सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखके समझते हैं। बाइबिल कहती है कि, "तुम किसीको मत मारो" और जैनदर्शन तथा

दूसरे दर्शन कहते हैं कि, सर्व प्राणियोंपर प्रेम और दया रखनी चाहिये । ' इन सबका अर्थ यही है कि, हमें किसीभी जविको मारना नहीं चाहिये । हमें प्रत्येक वस्तुके गुण, लक्षण और कर्म ये सब ध्यानमें रखना चाहिये । जगतमें जिस वस्तु· की स्थिति हम जान सकते है, उसका केवल एक भाग जाननेसे हम उसके ऐसे नियम नहीं जान सकते है, कि जो सारे जगतके लिये लागू हों सकें। तुम्हें जगतका स्वभाव ठीक २वर्णन करना हो, तो तुम उसकी जुदी २ सम्पूर्ण बस्तुओके स्वभाओंका अभ्यास करो । जब तुम यह करलोगे, तभी सब भागोंके लिये वे नियम लागू कर सकोगे । हम अपने मनमें यह समझ सकते है कि, हमारा किरायेदार नीचेके मंजिलमें रहता है इसलिये हम उससे ऊँचे हैं ।

परन्तु इससे ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये कि, हम ऊंचे हैं इसलिये उसे पैरोंसे रोंध डालनेका हमें अधिकार है । उसको भी किसी समय पहले दूसरे तीसरे और शायद आन्तिम मंजिलपर रहनेका अधिकार मिल सकता है। जो ऊंची अवस्थामें हो उसे नीची अवस्थावालेको रोंध डालनेका अधिकार नहीं है । यदि कोई यह कहे कि, उसे स्वयं वैसा करनेका सत्व है, अथवा दूसरे जीवोंके मारे विना आपमें पूरा बल नहीं आसकता है, तो हमारा तत्त्वज्ञान तत्कालही कहेगा कि नहीं, चाहे जैसी ऊची अवस्थामें किसी जीवको मारना महापाप है और उस पाप करनेवालेको समझना चाहिये कि अपने लिये एक नीची गति पसन्द करली है । यदि व्यापार करना हो, तो ऐसा करना चाहिये कि, जिसमें नफा हो;

और नुकसान न हो तथा कर्ज न हो। उच्चस्थिति वही कही जायगी, जिसमें कर्ज अथवा दिवाला न हो। जो विना दिवालेकी और पूरी पूरी मुक्त स्थिति है, वही उच्चस्थिति है। मुक्तस्थितिको भी जिसे कि हम मोक्ष कहते है। इसी प्रकार (कर्मादिके कर्जसे रहित,) समझनी चाहिये। कर्मसम्बन्धी विचार बहुत उलझनका है उसका कुछ स्वरूप मैं अपने पहले व्याख्यानमें कह चुका हूं।

'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' की रूपककथाके समान कर्मसिद्धान्तमे भाग्य (नसीब) अथवा क्रिश्चियन सिद्धान्तसे मिलता हुआ कुछभी नहीं है। इसमें ऐसा भी नहीं माना है कि, मनुष्यजीव दूसरे किसीके वन्धनमें आ पड़ा है। इसीप्रकारसे यह भी नहीं कहा है कि वह अपनी किसी बाहिरी शक्तिके आधीन हो गया है। परन्तु एक आशयसे वा अपेक्षासे कर्मका अर्थ भाग्यभी हो सकता है जो कुछ थोड़ासा करनेके लिये हम स्वतत्र हैं, वही करनेके लिये देव (पुरुष विशेष?) स्वतंत्र नहीं है। और हमें अपने कर्मोंका परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है। कई एक कर्म परिणाम वलवान् होते है और कई एक साधारण होते है। कई एक परिणाम ऐसे होते है कि, उनका फल भोगनेके लिये वहुत समय चाहना पड़ता है और कई एक परिणाम ऐसे होते है कि, उनके भोगनेके लिये थोड़ा समय लगता है। कई एक परिणाम ऐसे होते है कि, उनका क्षय वहुत लम्बे समयमें होता हैं और कई एकोंका वहुत थोड़े वक्तमें, पानीसे रज धुल जानेके समान हो जाता है। जो कर्म पक्के इरादेसे (तीव्र अध्यवसायोंसे)

नहीं किये जाते हैं, उनका असर पानीसे धो डालनेसे जो रज खिर जाती है उसीके समान होता है। ऐसी दशामें कितनेही किये हुए कर्मोंका जो असर पहले पड़ा हुआ होता है, उसके सन्मुख दूसरे कर्म किये जावें, तो वह दूर हो जाता है। इसलिये कर्मविचारको भाग्यविचार नहीं कह सकते है। परन्तु हम कहा करते हैं कि, अपनी इच्छाके विना हम सब एक जेलमें नहीं जाते है अथवा अपने यत्न किये विना हम उस स्थितीको नहीं पहुँच सकते हैं, हमारी यह वर्तमान स्थिति (पर्याय) अपने भूतकालके कर्मों, शब्दों और विचारोंकाही परिणाम है। अमुक एक मनुष्य मर गया है, इससे सारे जीव उस सम्पूर्ण स्थितिको प्राप्त करेंगे अथवा उस मनुष्यके माननेसे सब तर जावेंगे ऐसे कथनको 'फेटालीजमकी थीअरी' (प्रारब्धवादका नियम) कहते हैं। जो मनुष्य पवित्रतासे तथा सद्गुणोंसे रहते हैं पर अमुक भावना (थीअरी) अंगीकार नहीं करते हैं, वे उस स्थितिको नहीं पहुँच सकते हैं और जो उस थीअरी-को अंगीकार कर लेते हैं, वे उसी कारणसे सम्पूर्ण स्थितिको प्राप्त-कर लेते है, ऐसा जो कथन है सो भाग्यवाद है। जगत्तारक नामकी जो श्रद्धा है, उसका अर्थ उस ईश्वरशक्ति अथवा तत्त्वका अनुकरण करना है जोकि अपने आपमें भी है। जब यह शक्ति पूर्ण रीतिसे विकसित होती है अर्थात् उत्तम विचाररूपी यज्ञकुंडमें लघुताका हवन हो जाता है, तब हम भी क्राइस्ट (परमात्मा) हो जाते हैं। हमभी स्वस्तिक (क्रोस) को धर्मचिन्ह समझते है। प्रत्येक जीव नीची स्थितिमेंसे निकलकर ऊंची स्थितिमें जा सकता है, परन्तु वह

तबतक उस स्थितिको नहीं पहुंच सकता है, जबतक कि दर्शन, ज्ञान और चरित्ररूप रत्नत्रयको नहीं पा लेता है ।

सम्यग्दर्शनका अर्थ यह नहीं है कि, अपना मरण होनेके पीछे दूसरी स्थिविमें जन्म लेना पडे (?) किन्तु यह है कि, सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेके पीछे सम्यक्चरित्र प्राप्त हो जाता है, तो फिर किसी भी नीची गतिमें गये विना अपने स्वभावसे ही ऊंची गतिमें चढ़ जाता है। यह व्याख्यान मैंने किसी प्रकारके रूपक तथा अलंकारके विना साफ २ शब्दोंमें कहा है, (क्योंकि उपस्थित सभा विद्वानोंकी है) परन्तु जब अज्ञानी लोगोंके समक्ष ये सब सत्य तत्व कहना पड़ते हैं, तब कुछ न कुछ अलंकार अथवा दृष्टान्तादि देनेकी आवश्यकत होती है, और पीछे उनका यथार्थ अभिप्राय समझाया जाता है

[जैनहितैषी]